

एम.ए.एच.आई. -04



वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

एम.ए.एच.आई. - 04

ऐतिहासिक चिन्तन - 3

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

एम.ए. पाठ्यक्रम
(इतिहास)

खण्ड-3

इकाई संख्या

इकाई 10	
बीसवीं शताब्दी का इतिहास लेखन: स्पेंगलर और टायनबी के संदर्भ में	5-14
इकाई 11	
महाकाव्य, कौटिल्य अर्थशास्त्र व भास के साहित्य की ऐतिहासिक विवेचना	15-38
इकाई 12	
कालीदास - साहित्य, पुराण व हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति की ऐतिहासिक विवेचना	39-50
इकाई 13	
फाहियान, युवान च्यांग और द्वेतसिंग की भारत यात्रा वृत्तांत	51-66

पाठ्यक्रम विकास समिति

प्रो. बी.एस. शर्मा, कुलपति (अध्यक्ष)

प्रो. रविन्द्र कुमार

निदेशक

नेहरू स्मारक संग्रहालय एवं पुस्तकालय, नई दिल्ली।

प्रो. बी.आर. गोवर

पूर्व निदेशक, भारतीय इतिहास अनुसंधान परिषद, नई दिल्ली।

प्रो. एस.पी. गुप्ता

इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम वि.वि., अलीगढ़।

प्रो. जे.पी. मिश्रा

पूर्व इतिहास विभागाध्यक्ष, काशी हिन्दू वि.वि, वाराणसी।

प्रो. के.एस. गुप्ता

पूर्व विभागाध्यक्ष, मोहन लाल सुखाड़िया वि.वि, उदयपुर

डा. बी.के. शर्मा

इतिहास विभाग कोटा खुला वि.वि, कोटा।

डा. श्रीमती कमलेश शर्मा

इतिहास विभाग, कोटा खुला वि.वि, कोटा।

डा. याकूब अली खान

इतिहास विभाग कोटा खुला वि.वि, कोटा।

पाठ्यक्रम निर्माण दल

प्रो. मन्सूरा हैदर

इतिहास विभाग, अलीगढ़ मुस्लिम विश्वविद्यालय, अलीगढ़।

डा. नारायण सिंह भाटी

पूर्व निदेशक, चौपासनी शोध संस्थान, जोधपुर।

डा. विक्रम सिंह राठौर

इतिहास विभाग, जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर।

डा. अमित मुकर्जी

इतिहास विभाग, सेंट जॉन्स कॉलेज, आगरा।

प्रो. सीताराम सिंह

इतिहास विभाग, बिहार विश्वविद्यालय, मुजफ्फरपुर।

अकादमिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था

प्रो.(डॉ.) नरेश दाधीच
कुलपति
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

प्रो.(डॉ.)बी.के. शर्मा
निदेशक(अकादमिक)
संकाय विभाग

योगेन्द्र गोयल
प्रभारी अधिकारी
पाठ्य सामग्री उत्पादन एवं वितरण विभाग

पाठ्यक्रम उत्पादन

योगेन्द्र गोयल

सहायक उत्पादन अधिकारी,

वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय, कोटा

पुनः उत्पादन - Oct 2012 MAHI-04/ISBN No.-13/978-81-8496-263-5

इस सामग्री के किसी भी अंश को व. म. खु. वि., कोटा की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में 'मिमियोग्राफी' (चक्रमुद्रण) द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

व. म. खु. वि., कोटा के लिये कुलसचिव व. म. खु. वि., कोटा (राज.) द्वारा मुद्रित एवं प्रकाशित।

इकाई 10

बीसवीं शताब्दी का इतिहास लेखन : स्पेंगलर और टायनबी के संदर्भ में

इकाई की रूपरेखा

- 10.0 उद्देश्य
- 10.1 प्रस्तावना
- 10.2 स्पेंगलर के विचार
 - 10.2.1 प्रकृति और इतिहास
 - 10.2.2 इतिहास में संस्कृतियों का उत्थान और पतन
 - 10.2.3 संस्कृति
 - 10.2.4 संस्कृति की वृत्तात्मकता
 - 10.2.5 संस्कृति और सभ्यता
 - 10.2.6 तोलमेक और कोपरनिकल दृष्टिकोण
 - 10.2.7 संस्कृतियों का जीवन काल
- 10.3 टायनबी के विचार
 - 10.3.1 सामाजिक अध्ययन की महत्ता
 - 10.3.2 सभ्यता की समस्याएं
 - 10.3.3 सभ्यता का विकास और पतन
 - 10.3.4 सभ्यताओं से सम्पर्क
 - 10.3.5 सर्पिल सिद्धांत
- 10.4 स्पेंगलर एवं टायनबी के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण
- 10.5 बीसवीं शताब्दी के इतिहास दर्शन की प्रेरक शक्तियां
- 10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न
- 10.7 संदर्भ ग्रंथ
- 10.0 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन का उद्देश्य बीसवीं सदी के इतिहास लेखन की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों को समझना है। इस काल के दो विचारकों स्पेंगलर एवं टायनबी ने किस प्रकार इतिहास लेखन को सामाजिक सार्थकता प्रदान की। इसे समझने में यह इकाई सहायक सिद्ध होगी।

10.1 प्रस्तावना

इतिहास लेखन पद्धति के क्रम में 19वीं शताब्दी की प्रमुख विशेषता सुनियोजित विश्व इतिहास लिखने का प्रयत्न थी। कालिनवुड के शब्दों में "सम्पूर्ण इतिहास विचारधाराओं का

इतिहास है तथा मनुष्य के कार्य विचारपूर्ण होते हैं एवं इतिहासकार ऐतिहासिक अभिनेता के विचारों की पुनरावृत्ति कर अतीत का निर्माण करता है।" इसी कम में बीसवीं शताब्दी के दार्शनिक इतिहासज्ञों ने भी सोचा और ओसवॉल्ड स्पेंगलर ने "डिक्लाइन ऑव द वेस्ट" तथा ओर्नोल्ड टायनबी ने "स्टडी ऑव हिस्ट्री" नामक पुस्तक में सुनियोजित इतिहास लिखने का प्रयत्न किया। इन दोनों ग्रंथों में उन समस्याओं को प्रतिबिम्बित करने का प्रयत्न किया गया है जिनको सामान्यतः इतिहासज्ञों ने अछूता ही छोड़ दिया है।

बीसवीं शताब्दी के इतिहास लेखन का विषय राष्ट्र, सामाजिक संस्था अथवा जाति न होकर पूरी सभ्यता हो गया है तथा अब इतिहासकार तत्संबंधी सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक पक्षों का अध्ययन करता है।

10.2 स्पेंगलर के विचार

स्पेंगलर के विचारों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अधोलिखित बिन्दुओं में समझा जा सकता है -

10.2.1 प्रकृति और इतिहास : स्पेंगलर ने विश्व के स्थिर, दृश्य, मूर्त निर्मित स्वरूप को प्रकृति रूपी विश्व तथा विश्व के गतिमान प्रक्रियात्मक और अमूर्त और निर्माण रूप को इतिहास रूपी विश्व में विभाजित किया है। उसके मत में प्रकृति रूपी विश्व देश (स्पेश) के विस्तार में तथा इतिहासरूपी विश्व काल (टाइम) के अंतराल में प्रसारित और व्याप्त है। इतिहास को काल के अन्तराल में व्याप्त मानते हुए स्पेंगलर ने काल की प्रवृत्ति को नियतिवादी माना है तथा उत्पत्ति, विकास, क्षय और विलय के क्रम को इतिहास की नियति स्वीकारा है। उसके अनुसार इतिहास का अतीत और भविष्य सुनिश्चित और बोधगम्य है।

10.2.2 इतिहास में संस्कृतियों का उत्थान और पतन: स्पेंगलर मनुष्य के वैयक्तिक और सामाजिक जीवन में पर्याप्त सादृश्यता देखते हैं, उनके अनुसार विभिन्न जातियां, कबीले, पीढ़ियां, वंश और समाज प्रकट होते हैं और अपनी पलभर की आभा के पश्चात मानवता की धारा में विलीन हो जाते हैं। इन मानव धारा के तल पर संस्कृतियां तरंगवत चलती रहती हैं। इस प्रकार से मानव इतिहास संस्कृतियों के जीवन का संग्रह है।

10.2.3 संस्कृति: स्पेंगलर ने संस्कृति को इतिहास दर्शन का केन्द्र बिन्दु स्वीकार किया है। वह विभिन्न संस्कृतियों को उच्चतम जीवन के सार तत्व की तरह स्वीकारते हैं। उन्होंने संस्कृतियों के चार अधोलिखित काल स्वीकार किए हैं :

- (क) **बसन्त काल** - यह धर्मनिष्ठा का काल है, भारतीय संदर्भ में यह काल वैदिक संहिताओं का युग माना जा सकता है। इस युग की प्रधान विशेषता धार्मिक चेतना का विकास होती है।
- (ख) **ग्रीष्म काल** :- इस काल की प्रमुख विशेषता, इस काल में संशय के फलस्वरूप सांस्कृतिक आत्मबोध उत्पन्न होना तथा आलोचनात्मक मनोभाव का विकास है। भारतीय संदर्भ में इसके अंतर्गत उपनिषद् साहित्य को रखा जाता है।
- (ग) **पतझड़ काल** :- इस काल में प्रत्येक संस्कृति प्रौढ़ता को प्राप्त करती है। इस युग की प्रधान विशेषता बौद्धिक पराकाष्ठा होती है तथा इस समय बौद्धिकता का प्रधान आधार

तर्क होता है । भारतीय संदर्भों में यह काल महावीर और बुद्ध का काल है जबकि प्राचीन वैदिक सिद्धांतों पर प्रश्नवाचक चिन्ह लगाए गए और धर्म की नवीन मान्यताएं प्रतिष्ठापित हुईं ।

(घ) **शिशिर काल :-** इस काल की मुख्य विशेषता महानगरीय सभ्यताओं का उदय है । इस काल में संस्कृति नष्ट होकर अपने प्रतिरूप सभ्यता में परिवर्तित होती है । स्पेंगलर की मान्यता है कि इस युग में धार्मिकता के पल के फलस्वरूप विज्ञान के विभिन्न मत जन्म लेते हैं ।

स्पेंगलर के संस्कृति विषयक सिद्धांत की सबसे बड़ी कमजोरी उसके द्वारा संस्कृति के जन्म और आरम्भ विषयक जानकारी न प्रदान करना है । वह संस्कृति के जन्म को रहस्यमयी मानते हैं, उनके अनुसार संस्कृति का आरम्भ एक भू-प्रदेश में होता है और वही विकसित होकर सभ्यता में परिवर्तित हो जाती है ।

10.2.4 संस्कृति की वृत्तात्मकता: स्पेंगलर के शब्दों में विश्व इतिहास अनन्त निर्माणों और पुनर्निर्माणों का और जीवित शरीरियों के अदभूत उत्थान और पतन का चित्रपट है । वह इतिहास की प्रवृत्ति को रेखात्मक न मानकर वृत्तात्मक स्वीकारते हैं । वह इतिहास के प्राचीन, मध्यकालीन और अर्वाचीन युगों में विभाजन को भी स्वीकार नहीं करते हैं ।

10.2.5 संस्कृति और सभ्यता: स्पेंगलर के शब्दों में सभ्यता पतन, क्षय, जड़ता की वह अवस्था है, जिसमें संस्कृति विकास और प्रौढ़ता प्राप्त कर प्रवेश करती है । अतः सभ्यता, संस्कृति का वार्धक्य काल है । अर्थात् सभ्यता एक परिसमाप्ति है । स्पेंगलर ने कृत्रिमता, बौद्धिकता, शीतलता, शान्ति, समानता, सार्वजनिकता और नागरिकता को सभ्यता का प्रमुख लक्षण माना है। उनकी कृति का अधिकांश भाग सभ्यता के लक्षणों और रूपों से भरा पड़ा है । वह राष्ट्र और समाज के सार्वजनिक नगर और प्रान्तों में विभाजन को सभ्यता का प्रमुख लक्षण स्वीकारते हुए नगर को शोषक वर्ग के स्थल तथा प्रान्त को शोषितों के स्थल के रूप में परिभाषित करते हैं । वह संस्कृति के अन्तर्गत वैयक्तिकता और भावुकता के गुणों की व्याप्तता को एक गुण स्वीकारते हुए सभ्यता को वैयक्तिकता की भावना का अन्त करने वाली तथा आर्थिकता और यांत्रिकता की प्रवृत्ति को बढ़ाने वाली मानते हैं ।

10.2.6 तोलमेक और कोपरनिकल दृष्टिकोण: तोलमेक से स्पेंगलर का तात्पर्य यह है कि किस प्रकार से यूनानी भौगोलिक तोलेमी ने यह अशुद्ध स्थापना की थी कि पृथ्वी ही सौरमण्डल का केन्द्र स्थल है, उसी प्रकार वह यूरोपीय इतिहासकारों की इस धारणा को भी गलत स्वीकारते हैं कि यूरोप ही समस्त इतिहास का केन्द्रस्थल है ।

कोपरनिकल से स्पेंगलर का तात्पर्य कोपरनिकल की मान्यता के समान जैसे सौर मण्डल वृत्ताकार क्षेत्रों का समूह है, उसी प्रकार इतिहास किसी एक संस्कृति की जीवन लीला न होकर अनेक संस्कृतियों के जीवनवृत्तों का कम मानने से है । उनके अनुसार संस्कृतियां सतत् रूप से उत्पन्न होती हैं और नष्ट होती रहती हैं ।

10.2.7 संस्कृतियों का जीवन काल: स्पैंगलर ने समस्त विश्व को नौ संस्कृतियों के क्रम में विभाजित किया है, वह निम्न प्रकार है - मिस्री, हिन्दी, अरबी, चीनी, क्लासिकल, यूरोपियन, बाबुली, मैक्सिकन और रूसी ।

स्पैंगलर के संस्कृतियों के अध्ययन से यह प्रमाणित होता है कि प्रत्येक संस्कृति का सामान्य जीवन कम 800 से 1000 वर्ष का होता है और उसके पश्चात अनिश्चित अवधि की सभ्यता प्रारम्भ होती है । स्पैंगलर के अनुसार प्रत्येक संस्कृति की अपनी विशिष्ट शैली एवं वैयक्तिकता होती है तथा वह उसी के अनुरूप विकसित हो स्वयं को अन्य संस्कृतियों से विभिन्न प्रकार से स्थापित करती है । और प्रत्येक संस्कृति अपनी पूर्णता में प्रवेश कर ढलना आरंभ करते हुए सभ्यता में परिवर्तित हो जाती है ।

स्पैंगलर ने सभ्यता की विशेषताओं का वर्णन करते हुए सभ्यता की विभिन्न अवस्थाओं का अधोलिखित विवरण दिया है -

- (1) घर, जाति, रक्त समूह -और मातृ भूमि की भावना के स्थान पर महानगरों की स्थापना।
- (2) स्वार्थपरता की भावना का विकास ।
- (3) अन्तर्राष्ट्रीय समाज की स्थापना की ओर अग्रसर होकर समन्वित संस्कृति का विकास ।
- (4) लोक (फॉक) के स्थान पर जनता (मास) के विचार के विकसित होने से राष्ट्रीय जीवन में असंतुलन ।
- (5) श्रृंगारिकता एवं दैहिक सुखों की सर्वोच्चता ।
- (6) राष्ट्र राज्य और ग्रामीण वातावरण के स्थान पर शहरीकरण एवं अन्तर्राष्ट्रीयकरण का बढ़ता हुआ प्रभाव ।

इस प्रकार से स्पैंगलर ने दार्शनिक गेटे के जीवन दर्शन को इतिहास दर्शन में प्रतिष्ठापित करने की चेष्टा की है, स्पैंगलर की कृतियां गेटे के प्रसिद्ध ग्रंथ "फाउस्ट " के उद्धरणों से भरी हुई हैं । इसके साथ ही स्पैंगलर के विचारों में कठोर नियतिवाद और निराशावाद तत्कालीन यूरोप की परिस्थितियों का परिणाम है क्योंकि स्पैंगलर की प्रसिद्ध कृति "**पश्चिमी जगत का पतन**" उस समय प्रकाशित हुई थी जब यूरोप प्रथम विश्व युद्ध की ज्वाला में धधक रहा था ।

उक्त सभी तथ्यों के बावजूद स्पैंगलर की इतिहास दर्शन को महती देन है । स्पैंगलर दार्शनिक इतिहासज्ञों में पहले ऐसे व्यक्ति हैं जिन्होंने इतिहास का विभिन्न कालों - प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक में विभाजन को अस्वीकार करते हुए कोपरानिक्स पद्धति को प्रतिष्ठापित किया । स्पैंगलर की इतिहास दर्शन को दूसरी प्रधान देन इतिहास की चक्रीय गति को मानता है जो उत्पत्ति, विकास और पतन के चक्रिय क्रम में चलता रहता है, "सभ्यता संस्कृति की अंतिम अवस्था है" स्पैंगलर का यह मत स्वयं में असाधारण है । स्पैंगलर की यह धारणा भी भविष्य में सिद्ध हुई कि साम्राज्यवाद अब अपनी अन्तिम श्वास गिन रहा है तथा रूस - आने वाले कल का नया सितारा होगा । इस प्रकार से स्पैंगलर ने स्वयं की इतिहास दर्शन की व्याख्याओं में जर्मन दर्शन से सार तत्व को समाहित करने का प्रयत्न किया है ।

10.3 टायनबी के विचार

स्पैंगलर के पश्चात बीसवीं शताब्दी के दूसरे प्रमुख विचारक टायनबी हुए जिन्होंने इतिहास लेखन की धारा को सर्वाधिक प्रभावित किया है। टायनबी की प्रसिद्ध कृति 'ए स्टडी ऑफ हिस्ट्री' है जो किसी भी एक व्यक्ति द्वारा की गयी सर्वोच्च एवं सर्वोत्तम ऐतिहासिक उपलब्धि है जिसमें टायनबी ने मानव समाज की सभी सभ्यताओं के विकास एवं पतन के कारणों की विवेचना की है।

टायनबी के विचार तंत्र पर थ्यूसिडाइडिस का सर्वाधिक प्रभाव पड़ा, जब टायनबी 1914 में अपने विद्यार्थियों को थ्यूसिडाइडिस पढ़ा रहा था उसने अपने अनुभव को लिखा, " वह अनुभव जो हम आज आधुनिक विश्व में अर्जित कर रहे थे, उन्हें थ्यूसिडाइडिस ने अपने समय अनुभूत कर लिया था। "इस धारणा के आधार पर टायनबी की यह धारणा बनी कि सभ्यताओं में एक समसामायिकता होती है तथा कालक्रम की प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक काल की धारणा निरर्थक है।

थ्यूसिडाइडिस के अलावा टायनबी ने अरस्तु द्वारा मानव जीवन की घटनाओं को समझने के लिए स्थापित पद्धति को भी स्वीकार किया जो अधोलिखित है :-

- (1) तथ्यों को निश्चित कर उनका संग्रह करना।
- (2) विभिन्न तथ्यों का तुलनात्मक अध्ययन के पश्चात सामान्य नियमों का निर्धारण तथा
- (3) कल्पना के रूप में तथ्यों की कलात्मक पुनर्रचना।

टायनबी के विचारों को अध्ययन की सुविधा की दृष्टि से अधोलिखित बिन्दुओं में विभाजित किया जा सकता है -

10.3.1 सामाजिक अध्ययन की महत्ता :- टायनबी के अनुसार इतिहास काल और स्थान में घटित हुई किन्हीं विशिष्ट घटनाओं का विवरण नहीं है और न ही विभिन्न राज्यों या मानव के एकीकृत स्वरूप का इतिहास है। अपितु ऐतिहासिक अध्ययन के वास्तविक क्षेत्र तो विभिन्न समाज हैं जो राष्ट्र राज्यों या नगर राज्यों या किसी भी अन्य राजनीतिक समुदाय से स्थान और काल की दृष्टि से भी अधिक विस्तृत हैं। टायनबी के मतानुसार विभिन्न समाज वह परमाणु हैं अर्थात् वह सबसे छोटी इकाई है जिनसे इतिहास की रचना की जाती है। इसको आगे विस्तार से बताते हुए टायनबी कहते हैं कि इतिहास के अध्ययन का प्रमुख उद्देश्य सभ्यता है जिसमें धार्मिक चारित्रिक विशेषताओं और राजनीतिक तत्वों को संयुक्त रूप से अध्ययन किया जाता है। टायनबी ने अपनी रचना "सिविलाइजेशन ऑफ ट्रायल" में इसको समझाते हुए लिखा है कि सभ्यता से मेरा अभिप्राय ऐतिहासिक अध्ययन का वह लघुत्तम भाग है जिस पर अपने देश के इतिहास को समझने की चेष्टा करते समय मनुष्य की दृष्टि पहुँचती है" इस प्रकार से टायनबी ने अपने समय की समस्त विश्व की सभ्यताओं को विभिन्न अधोलिखित वर्गों में विभाजित किया है।

(1) प्रमुख सभ्यताएं - पश्चिमी, यूरोपीय, बेजेन्टाइन, इस्लामी, हिन्दु तथा सुदूर पूर्वी जगत।

(2) प्रच्छन्न सभ्यताएं - हेलेनिक, सीरियाई, इंडिक और सीनिक।

(3) प्राचीन सभ्यताएं - मिनोअन, बेबीलोनियन, हिट्टी ।

इस प्रकार से कुल 10 सभ्यताएं हैं । इसके पश्चात टायनबी ने इस्लामी सभ्यता को (1) अरबी और (2) ईरानी सभ्यता में, तथा प्राचीन ईसाई सभ्यता को (1) अनातोलिया और रूस की सभ्यताओं में विभाजित किया है । इस प्रकार से कुल 21 सभ्यताएं हो जाती हैं ।

इसके पश्चात वे अवरूढ़ व अधूरी सभ्यताओं का विवरण प्रस्तुत करते हुए लिखते हैं कि सुदूर पूर्वी इस्रायल, सुदूर पश्चिमी इस्रायल तथा स्केदीनेवियन वह सभ्यताएं हैं, जो प्रसव काल से ही कठोर परिस्थितियों के कारण विकसित न हो सकी तथा पोलीनेसिअन, एस्किमों, घुमक्कड, स्पर्टन तथा ओसामनली आविर्भूत होकर ही रह गयी ।

अर्नेस्ट बारकर ने टायनबी के सभ्यताओं के वर्गीकरण को अप्राकृतिक बताते हुए इसे लिनोनिज्म की संज्ञा दी है जो वनस्पति शास्त्र में प्रयुक्त होने वाली एक विधि है तथा उसे यहां स्वीकार नहीं किया जा सकता है ।

10.3.2 सभ्यता की समस्याएं: टायनबी ने सभ्यताओं की तीन भौगोलिक समस्याओं (1) उत्पत्ति (2) विकास और (3) पतन का विवरण प्रस्तुत करते हुए सभ्यताओं की उत्पत्ति के संबंध में लिखा है कि कुछ समाज अस्तित्व में आते ही स्थिर क्यों हो जाते हैं तथा वह उसी प्राथमिक अवस्था में ही रहते हैं तथा सम्पूर्ण विकसित सभ्यता के रूप में विकसित नहीं हो पाते हैं, जबकि इसके विपरीत कुछ समाज सभ्यता के स्तर तक पहुंच जाते हैं ।

टायनबी के अनुसार सभ्यताओं की उत्पत्ति प्रजाति अथवा भौगोलिक कारक पर निर्भर न करके उस समाज में निहित सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग व संतुलित परिस्थितियों (संतुलित परिस्थितियों से यहां तात्पर्य उन परिस्थितियों से है जो न तो बहुत अधिक पक्ष में होती हैं और न ही विराधी होती हैं) के विशिष्ट आनुपातिक सम्मिलन पर निर्भर करती, है । उन्नत प्रजातीय कारक को सभ्यता की उत्पत्ति में निर्णायक कारण होने की मान्यता को अस्वीकारते हुए टायनबी ने लिखा है कि प्रजातीय सर्वोच्चता सभ्यता की उन्नति के लिए उत्तरदायी होती है तो हिटलर उच्च सभ्यता की उत्पत्ति कर सकते थे । टायनबी किसी भी सभ्यता की उत्पत्ति के लिए सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग, गतिशील नेतृत्व तथा कुछ बुद्धिमान व्यक्तियों के समूह को मुख्य कारक स्वीकारते हुए यह मत व्यक्त करते हैं कि किसी भी सभ्यता की उत्पत्ति दूर दृष्टि परक एवं परिश्रमी व्यक्तियों पर निर्भर करती है । यहां सृजनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग की तुलना मानव शरीर के मस्तिष्क से की जा सकती है ।

परिस्थितियों के संतुलित प्रभाव की विवेचना इस प्रकार से की जा सकती है कि बहुत अधिक सुगम परिस्थितियां जहां प्रगति को रोकती हैं, वहीं अत्यधिक प्रतिकूल परिस्थितियां होने से भी प्रगति का मार्ग अवरूढ़ हो जाता है । टायनबी के अनुसार जब सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग और संतुलित परिस्थितियां समानुपातिक रूप से उपलब्ध होती हैं, तो एक विशेष प्रकार की प्रक्रिया, जिसे "चुनौती और विरोध" की प्रक्रिया कहा जाता है, होती है तथा किसी भी सभ्यता की उत्पत्ति इस चुनौती और विरोध की प्रक्रिया का ही परिणाम होती है ।

टायनबी ने सभ्यता की उत्पत्ति के लिए सृजनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग और नेतृत्व में सक्षम व्यक्तियों की महत्ता को प्रतिपादित करते हुए निर्गमन और प्रत्यागमन की प्रक्रिया का

भी उल्लेख किया है । उसके अनुसार सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग के अन्तर्गत कुछ ऐसे व्यक्तित्व होते हैं जो कुछ समय के लिए संसार से अलग हो जाते हैं और शक्ति का संचय कर फिर संसार में वापिस आकर अपूर्व वेग से सृजन कार्य में संलग्न हो जाते हैं ।

10.3.3 सभ्यता का विकास और पतन : टायनबी के अनुसार सभ्यता के विकास में जहां चुनौती और विरोध तथा निर्गमन और प्रत्यागमन की आने वाली चुनौतियों का समुचित सामना नहीं कर पाती है तथा उसका पतन प्रारम्भ हो जाता है । सभ्यता की पतन की प्रक्रिया को परिभाषित करते हुए टायनबी ने लिखा है कि सभ्यताएं आत्महत्या कर विनिष्ट होती हैं तथा उनकी हत्या कभी भी नहीं होती है । जिस प्रकार से सभ्यता की उत्पत्ति चुनौती और विरोध के संतुलन पर तथा विकास निर्गमन और प्रत्यागमन की प्रक्रिया पर निर्भर करता है । उसी प्रकार सभ्यता के विनाश की प्रक्रिया स्वयं का विध्वंस है ।

सभ्यता के विनाश की अवस्था को टायनबी के अनुसार तीन उप अवस्थाओं में विभाजित किया जा सकता है :

1. सभ्यता का विखण्डन
2. सभ्यता का विच्छेदन, और
3. सभ्यता का विलयन

सभ्यता के विखण्डन और विच्छेदन की प्रक्रिया में शताब्दियों का समय व्यतीत हो जाता है और कभी-कभी यह प्रक्रिया हजारों वर्षों तक भी चलती रहती है । उदाहरण के लिए मिल की सभ्यता का विखण्डन 16वीं शताब्दी ई. पू. में प्रारम्भ हो गया था । तथा इस सभ्यता का पूर्ण विलयन पहली शताब्दी ई. में हुआ ।

इसके अतिरिक्त टायनबी ने विघटित सभ्यता के काल में समाज को तीन वर्गों में : (1) सत्ताधारी अल्प संख्यक वर्ग, (2) आन्तरिक प्रोलेतोरिअत, और (3) बाह्य प्रोलेतोरिअत में विभाजित करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि विघटन के समय आन्तरिक प्रोलेतोरिअत बाहर से प्रेरणा पाकर विश्व जनीन धर्म की सृष्टि करता है, जबकि सत्ताधारी अल्पसंख्यक विघटन की गति को रोकने के लिए विश्व साम्राज्य का निर्माण करता है तथा बाह्य प्रोलेतोरिअत विघटन को पूरा करने के लिए आखिरी धक्का देने का कार्य करता है ।

बाह्य प्रोलेतोरिअत व आन्तरिक प्रोलेतोरिअत को क्रमशः बाह्य दलित वर्ग और आन्तरिक दलित वर्ग के रूप में माना जा सकता है । डॉ० बुद्ध प्रकाश ने समाज के तीनों भागों की व्याख्या करते हुए लिखा है कि सत्ताधारी अल्पसंख्यक वर्ग सभ्यता के विघटन के समय उच्च दर्शन की सृष्टि करता है जबकि आन्तरिक और बाह्य दलित वर्ग क्रमशः उच्च धर्म व वीर काव्य की रचना कर नवीन सभ्यता के लिए पृष्ठभूमि का निर्माण करते हैं ।

10.3.4 सभ्यताओं से सम्पर्क : टायनबी ने सभ्यताओं के विच्छेदन काल को सांस्कृतिक आदान-प्रदान के अनुकूल बताया है, उनके अनुसार जब दोनों मिलने वाली सभ्यताएं पतन की समान अवस्था में होती हैं तो उनके आदान-प्रदान की परिस्थिति सबसे अधिक उपयुक्त होती है। ऐसी दोनों सभ्यताओं के विभिन्न तत्वों के मिलने का कम सामान्यतः निम्न होता है : -

1. सर्वप्रथम आर्थिक तत्वों का संक्रमण

2. द्वितीय अवस्था में राजनीतिक तत्वों का संक्रमण
3. तृतीय अवस्था में बौद्धिक, भाषात्मक तथा कलात्मक
4. अन्त में धार्मिक

यह बहुत कठिनता से होता है। इस प्रकार से दो सभ्यताओं का मिलन वास्तव में मानवता के दो खण्डों का स्वाभाविक संबंध है और इसमें ऐतिहासिक अक्षुण्णता होती है, अतः इसे केवल पतन कालीन प्रक्रिया कहना समीचीन नहीं है।

10.3.5 सर्पिल सिद्धांत: टायनबी ने भी विको के समान इतिहास दर्शन के सर्पिल, सिद्धांत को स्वीकार किया है, उसके अनुसार सभ्यता के पतन के द्वारा मनुष्य जो दुःख अनुभव करता है, उसी में प्रगति होती है। वह सभ्यता और धर्म को एक रथ के रूप में देखता है जिसमें पहियों की गति सभ्यता की गति है और रथ धर्म का स्वरूप है।

बुद्ध प्रकाश के अनुसार टायनबी ने जनवरी 1955 में इन्टरनेशनल अफेयर्स में प्रकाशित एक लेख में यह मत व्यक्त किया था कि वह यहूदी परम्परा पर आश्रित ईसाई धर्म को विश्व की आशा का केन्द्र न स्वीकार कर, भारतीय समन्वय पर आधारित हिन्दु और बौद्ध धर्म में मानव समृद्धि और परित्राण की संभावना का दर्शन करते हैं।

10.4 स्पेंगलर एवं टायनबी के विचारों का तुलनात्मक विश्लेषण

इस प्रकार से टायनबी ने अपने समस्त दर्शन को अतीन्द्रिय बनाने की चेष्टा कर इतिहास को अलौकिक बनाने की चेष्टा की है जो वैज्ञानिक दृष्टि से तथ्यपरक और सही दृष्टिकोण नहीं है। लेकिन इस सबके बावजूद टायनबी ने इतिहास में राजनीति को प्रमुखता न प्रदान कर संस्कृति और धर्म को प्रधानता देकर सामाजिक आन्दोलनों और परिवर्तनों पर ध्यान आकृष्ट किया है और उनका यह स्वीकार करना कि समस्त विश्व का एकीकरण, धर्मों का समन्वयन और आर्थिक विषमताओं का निराकरण इतिहास की मुख्य प्रवृत्ति है।

स्पेंगलर और टायनबी दोनों ही बीसवीं शताब्दी के इतिहास दार्शनिक हैं। दोनों में प्रमुख अन्तर यह है कि जहां स्पेंगलर ने अपने विचारों का प्रतिपादन युवा अवस्था में किया था, वहीं टायनबी ने प्रौढ़ अवस्था में पहुंचकर अपने विचारों को लेखनी से आबद्ध किया। दोनों ही दार्शनिकों ने इतिहास की गति को चक्रिक माना तथा इतिहास के प्राचीन, मध्यकालीन और आधुनिक काल में विभाजन को एक स्वर से अस्वीकार कर दिया।

स्पेंगलर ने जहां विभिन्न सभ्यताओं की चर्चा करते हुए यह मत व्यक्त किया है कि प्रत्येक संस्कृति का एक मूलभूत प्रतीक होता है जिसके माध्यम से उस संस्कृति विशेष के आन्तरिक संबंधों को समझा जा सकता है।

इसके आगे वह कहता है कि प्रत्येक संस्कृति दूसरी संस्कृति से सर्वथा भिन्न व स्वतन्त्र होती है तथा उसके अपने स्वयं के स्थापित मूल्य होते हैं, जो किसी भी संस्कृति के प्रभाव से पूर्णतः अलग होते हैं। इसके विपरीत टायनबी ने प्रत्येक सभ्यता की उत्पत्ति और विकास के लिए सर्जनात्मक अल्पसंख्यक वर्ग, सक्षम नेतृत्व वर्ग एवं जुझारू व्यक्तियों को उत्तरदायी बनाते हुए यह सिद्ध करने की चेष्टा की है कि विभिन्न सभ्यताएं एक दूसरे को परस्पर प्रभावित करती हैं तथा उनका तुलनात्मक अध्ययन सम्भव है।

इस प्रकार से दोनों ही इतिहासज्ञ दार्शनिकों ने 19वीं शताब्दी की विवरणात्मक इतिहास लेखन की शैली को परित्याग कर तुलनात्मक एवं वस्तुपरक शैली को विकसित किया। पहली बार दोनों दार्शनिकों के विचारों से प्रभावित होकर इतिहास लेखन का मुख्य केन्द्र राजनीतिक घटनाक्रम एवं वंशावलियों से विक्रान्द्रित हो विभिन्न सभ्यताएं, संस्कृतियां हो गयी है। जिनके कारण साधारण मनुष्य इतिहास का प्रमुख प्रवक्ता बन गया।

यह सत्य है कि स्पेंगलर ने इस मान्यता की स्थापना की थी कि प्रत्येक सभ्यता पूर्ण रूपेण विलक्षण एवं स्वाधीन होता है तथा वह किसी भी प्रकार के तुलनात्मक विश्लेषण की सम्भावना नहीं छोड़ती है। परन्तु इसके बावजूद स्पेंगलर द्वारा समस्त मानव संस्कृति को आठ संस्कृतियों में विभाजित करने से तुलनात्मक अध्ययन की सम्भावनाएं विकसित हुईं और टायनबी ने उसे आगे बढ़ाते हुए तुलनात्मक अध्ययन किया।

स्पेंगलर की इस मान्यता ने कि संस्कृति एक ऐसी इकाई है जहां प्रत्येक अभिव्यक्ति दूसरी से संबंधित होती है तथा जहां सब लोग उस संस्कृति विशेष की आत्मा की अभिव्यक्ति करते हैं, मानव शास्त्रियों को काफी प्रभावित किया है, और उन्होंने इस कथन का उपयोग आदिम संस्कृतियों के अध्ययन में किया है।

टायनबी ने अपने ग्रंथ में मनोविज्ञान सहित विभिन्न सामाजिक विज्ञानों का उपयोग सभ्यताओं को समझने में किया है, इस दृष्टि से टायनबी बीसवीं शताब्दी का पहला ऐसा व्यक्ति था जिसने इतिहास को विभिन्न सामाजिक विज्ञानों से जोड़ मानव की समग्र रूप से अध्ययन करने की चेष्टा की है।

10.5 बीसवीं शताब्दी के इतिहास दर्शन की प्रेरक शक्तियां

बीसवीं शताब्दी में हुए व्यापक लोकतंत्रीकरण, मशीनी व तकनीकी विकास ' के फलस्वरूप विश्व अत्यधिक सिकुड़ गया है तथा विश्व की सभी महत्वपूर्ण व सामान्य घटनाओं में आम आदमी की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है जिस कारण इतिहास लेखन में सामान्य घटनाओं तथा आम आदमी की भूमिका महत्वपूर्ण हो गयी है। इससे इतिहास लेखन में सामान्य विवरणात्मक विधि का परित्याग करना अपरिहार्य हो गया है। टायनबी के प्रभाव से ही आज मानव समूहों द्वारा निर्मित विभिन्न संगठनों का अध्ययन बढ़ता ही जा रहा है तथा आज का प्रथम कोटि का इतिहासकार विभिन्न सामाजिक विज्ञानों के योगदान का उपयोग कर मानव समाज के श्रेष्ठतर इतिहास लेखन को अपना उद्देश्य बना चुका है।

आज इतिहास लेखन में टायनबी की समस्त विश्व के एकीकरण की भावना और आर्थिक विषमताओं के निराकरण की भावना, इतिहास की प्रमुख प्रवृत्ति बन गयी है।

आज मानव ने स्थानीय भेदोपभेदों को भुला दिया है तथा प्रत्येक देश और जाति का मनुष्य विश्व की सांस्कृतिक एकता को अनुभव कर रहा है। अतः इस कारण इतिहासकार की दृष्टि और क्षितिज भी व्यापक हो गए हैं। आज इतिहास का तात्पर्य सम्पूर्ण इतिहास को मानव एकता के दृष्टिकोण से देखना हो गया है। इतिहास की यह दृष्टि पुरातत्वविदों की खोजों से और भी अधिक पुष्ट हो गयी है। पुरातत्ववेत्ता आदिम युग की संस्कृतियों का अध्ययन करते समय भौगोलिक सीमाओं में रहकर आदिम मानव की प्रवृत्तियों का जब अध्ययन करता है तो उसे जो आश्चर्यजनक समानताएं दृष्टिकोण होती हैं तो उसकी समझ में मानव संस्कृति की

एकता आती है। वास्तव में मानव संस्कृति एक अखण्ड और अद्वैत सत्य है। जब इसे देशीय, जातीय या धार्मिक विभागों में विभक्त कर इसकी आयु निश्चित करने की कोशिश की जाती है तो एकदम अव्यवस्था हो जाती है अतः आज का इतिहास दर्शन मानव संस्कृति की इस एकता पर ही आधारित है।

भारतीय संदर्भ में यह तथ्य इस तरह से समझा जा सकता है कि आज समग्र भारतीय संस्कृति को उसमें निहित ब्राह्मण, बौद्ध, जैन यूनानी, शक, हुण इस्लामी व इसाई तत्वों के सम्मिलित रूप में ही समझा जा सकता है।

यदि इतिहासकार इन सभी तत्वों को टुकड़े-टुकड़े करने का प्रयत्न करेगा तो सब कुछ ही दूर हो जाएगा और बचेगी - अव्यवस्था। अतः भारतीय संस्कृति का उसके प्राचीन, मध्यकालीन व आधुनिक काल खण्डों व राजनैतिक घटना कम के रूप में अध्ययन न करके यदि उसमें हुए सामाजिक धार्मिक आन्दोलनों के इतिहास को और उसमें निहित आर्थिक कारकों को समझने की चेष्टा की जाएगी और वह अपने समग्र स्वरूप में समझी जा सकेगी और वर्तमान में भारतीय इतिहास लेखन में सामाजिक अध्ययनों की बढ़ती लोकप्रियता स्पेंगलर व टायनबी प्रभाव को ही व्यक्त करती है।

10.6 अभ्यासार्थ प्रश्न

1. स्पेंगलर और टायनबी के इतिहास दर्शन की प्रमुख विशेषताओं का विवरण दीजिए?
2. बीसवीं शताब्दी के इतिहास लेखन को स्पेंगलर और टायनबी ने किस प्रकार प्रभावित किया, भारतीय इतिहास के संदर्भ में स्पष्ट कीजिये।

10.7 संदर्भ ग्रंथ

1. पाण्डे, गोविन्दचन्द्र, इतिहास : स्वरूप एवं सिद्धांत, राजस्थान हिन्दी ग्रंथ अकादमी जयपुर, 1973
2. बुद्ध प्रकाश, इतिहास दर्शन हिन्दी समिति, सूचना विभाग, उत्तर प्रदेश 1962
3. शेख अली, दी., हिस्ट्री, : इट्स थ्योरी एंड मेथड, मैकमिलन इंडिया लिमिटेड, मद्रास 1904

इकाई - 11

महाकाव्य, कौटिलीय अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र व मास साहित्य की, तिहासिक विवेचना

इकाई की संरचना

- 11.0 उद्देश्य
- 11.1 प्रस्तावना
- 11.2 महाकाव्य
- 11.3 रचना काल
 - 11.3.1 रामायण
 - 11.3.2 महाभारत
- 11.4 महाकाव्यों का कथानक
 - 11.4.1 रामायण
 - 11.4.2 महाभारत
- 11.5 महाकाव्यों का महत्व
- 11.6 महाकाव्य: ऐतिहासिक स्रोत के रूप में
 - 11.6.1 राजनीतिक जीवन
 - 11.6.2 सामाजिक जीवन
 - 11.6.3 आर्थिक जीवन
 - 11.6.4 धार्मिक जीवन
- 11.7 अनुभागीय सारांश
- 11.8 अर्थशास्त्र
 - 11.8.1 अर्थशास्त्र का कृतित्व
 - 11.8.2 अर्थशास्त्र विषयक विवाद
 - 11.8.3 अर्थशास्त्र का प्रभाव
 - 11.8.4 अर्थशास्त्र की विषय वस्तु
- 11.9 अर्थशास्त्र ऐतिहासिक स्रोत के रूप में
- 11.10 धर्मशास्त्र
 - 11.10.1 धर्म
 - 11.10.2 धर्मशास्त्रों का परिचय
 - 11.10.3 धर्मशास्त्र ग्रंथों का निर्माण काल
- 11.11 ऐतिहासिक स्रोत के रूप में धर्मशास्त्र
- 11.12 स्मृति ग्रंथों में वर्णित जीवन

11.12.1 आर्य संस्कृति का क्षेत्र

11.12.2 राजनीतिक जीवन

11.12.3 सामाजिक जीवन

11.12.4 आर्थिक जीवन

11.13 मास का काल

11.14 मास की रचनाएँ

11.15 इकाई सारांश व अभ्यास कार्य

11.16 प्रासंगिक पठनीय ग्रंथ

11.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान सकेंगे कि

1. महाकाव्यों का ऐतिहासिक महत्व क्या है?
2. कौटिलीय अर्थशास्त्र का क्या महत्व है?
3. धर्मशास्त्र क्या हैं और उनकी विषय वस्तु क्या है?
4. मास की रचनाओं का क्या महत्व है?

11.1 प्रस्तावना

महाकाव्य, कौटिलीय अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र व भास की रचनाएँ ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण हैं। प्राचीन भारतीय जीवन के विविध पक्षों की जानकारी इससे प्राप्त होती है। प्राचीन भारतीय ग्रंथों का काल निर्धारण एक प्रमुख समस्या है। प्राचीन ग्रंथ कई शताब्दियों तक तो मौखिक-परंपरा के रूप में अस्तित्व में रहे। बाद में उन्हें लिपिबद्ध किया गया। फिर समय-समय पर उनमें प्रक्षिप्तांश भी जुड़ते रहे। महाकाव्यों (रामायण व महाभारत) में भारतीयों के सांस्कृतिक जीवन की झांकी मिलती है। कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्राचीन राजशास्त्र पर विस्तार से चर्चा हुई है। धर्मशास्त्रों में प्राचीन भारतीयों की जीवन शैली का चित्रण हुआ है। भास की रचनाएँ भी उत्कृष्ट हैं और ऐतिहासिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण हैं।

11.2 महाकाव्य

रामायण और महाभारत आर्यों के दो प्रमुख ग्रंथ हैं। भारतीय समाज में आज भी इनका महत्व माना गया है। रामायण के रचयिता वाल्मीकी व महाभारत के व्यास माने गये हैं। आज उनका जो रूप हमारे समक्ष है वह किसी एक युग या एक ही लेखक की कृति नहीं है। इनमें समय-समय पर संशोधन और परिवर्तन किये गये हैं। संस्कृत के मूल रामायण में केवल पांच काण्ड ही थे, परन्तु आज इसमें सात काण्ड और 24000 श्लोक हैं। वाल्मीकि के पांच कांड वाले मूल रामायण ग्रंथ में राम को युग का एक महान पुरुष माना है, और उसी रूप में चरित्र-चित्रण हुआ है। रामायण के प्रथम और सप्तम कांड में राम को ईश्वर के अवतार के रूप में माना गया। स्पष्ट हो जाता है कि ये दो कांड बाद के हैं।

रामायण तीन हैं - वाल्मीकि रामायण, आध्यात्म रामायण और तुलसी की रामायण (रामचरितमानस)। इन तीनों की मूल कथा तो एक है परन्तु इनके रचनाकारों ने अपने-अपने

दृष्टिकोण से तत्कालीन सामाजिक जीवन, धार्मिक दशा आदि का वर्णन किया है। पात्रों के चरित्र-चित्रण में थोड़ा अंतर आ गया है। वाल्मिकी के राम मनुष्य रूप में चित्रित हुए हैं। मानवी स्वभाव की दुर्बलताएँ और दृढताएँ उनमें हैं - परन्तु तुलसी के राम सर्वव्यापी व सर्वशक्तिमान हैं। वे मोक्षदायक हैं और भगवान विष्णु के अवतार हैं। रामायण में धार्मिकता आ गयी है। महाभारत में अठारह पर्व और लगभग एक लाख श्लोक हैं। संस्कृत के पाश्चात्य विद्वान मेकडानल्ड का मत है कि मूल महाभारत में केवल बीस हजार श्लोक थे। भिन्न-भिन्न व्यक्ति उनमें परिवर्तन करते रहे। महाभारत एक ऐतिहासिक ग्रंथ है व इसकी कहानियों और गाथाओं के साथ इतनी अधिक घुल मिल गयी है कि इनमें से ऐतिहासिक तथ्यों की सही जांच नहीं हो सकती है। ये दोनों ग्रंथ प्राचीन प्रचलित अनुश्रुतियों की संहिताएँ हैं। रामायण से स्पष्ट हो जाता है कि इस समय तक दक्षिण भारत में आर्यों ने प्रवेश किया। महाभारत यह स्पष्ट करती है कि किस तरह छोटे-छोटे महत्वहीन विवादों ने विवादग्रस्त समस्याओं के रूप में जन्म लिया।

11.3 रचना काल

11.3.1 रामायण:-

रामायण में वर्णित भौगोलिक वातावरण के आधार पर ही रामायण को महाभारत से प्राचीन माना गया है। यह कहा जा सकता है कि रामायण की रचना ईसा पूर्व 500 या 600 वर्ष पूर्व के युग में हुई। रामायण में बहुत से प्रक्षिप्तांश हैं। विंटरनिट्स का मानना है कि रामायण का वर्तमान रूप निश्चित रूप से 200 ईसवी तक बन गया था। (हिस्ट्री ऑफ इंडियन लिटरेचर पृ० 503) अन्य विद्वानों ने भी रामायण के रचनाकाल के बारे में भिन्न-भिन्न मत व्यक्त किए हैं। कामिन बुल्के ने इसका समय 600 ई. पू. माना है। मैकडोनल के अनुसार रामायण की रचना 500 ई.पू. में और इसका संशोधन 200 ई. पू. में हुआ। ये सभी मत अनुमान पर ही आधारित हैं और रामायण की पूर्व सीमा न बताकर ऊपर सीमा का संकेत करते हैं। ये सभी मत निम्न बातों को ध्यान में रखकर व्यक्त किये गये हैं - रामायण में बौद्ध धर्म का अभाव है। अतः मूल रामायण बुद्ध (जन्म 563 ई.पू. - निर्वाण 483 ई.पू.) से पूर्ववर्ती है। दोनों ही महाकाव्यों की पूर्व सीमा वैदिक काल की समाप्ति है। रामायण में पाटलिपुत्र, जिसे अजातशत्रु ' (ई.पू. 491 -459 तक) ने बनवाया था, उनका उल्लेख नहीं है। रामायण में विशाल और मिथिला का उल्लेख हुआ है। ये दोनों स्वतंत्र राज्य थे। यह अवस्था बुद्ध से पूर्व की ही है। रामायण में यूनानी प्रभाव भी बहुत कम दिखाई देता है, इसकी रचना भारत में यूनानियों के आगमन से पूर्व हुई। मूल रामायण में राम को अवतार नहीं माना गया है। अवतार की भावना का उदय बुद्ध के बाद में हुआ है। रामायण का अधिकांश चित्रण 5वीं श.ई.पू. का है। तत्कालीन समाज के आर्थिक, राजनीतिक, धार्मिक जीवन का इसमें अच्छा चित्रण मिलता है। निष्कर्षतः हम कह सकते हैं कि रामायण 600 ई.पू. के बाद की रचना नहीं है। इसके आंतरिक साक्ष्यों से इसकी पुष्टि हो जाती है। रामायण का वर्तमान रूप प्रथम या द्वितीय 25 ई.पू. में निश्चित रूप से इस रूप में आ चुका था।

11.3.2 महाभारत:

महाभारत की रचनाकाल के बारे में विवाद है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि महाभारत का युद्ध 2000 ई.पू. और 1000 ई.पू. के बीच में हुआ था (देखिये - पार्जिटर, ऐंशियेंट इंडियन हिस्टोरिकल ट्रेडीशन्स)। इस युद्ध के बाद ही चारणों ने इसकी घटनाओं और पात्रों की वीरता के संबंध में गीतों का निर्माण किया होगा। स्पष्ट है कि महाभारत के लेखबद्ध होने के सैकड़ों वर्ष पूर्व भी महाभारत चारण गीतों के रूप में विद्यमान रही होगी। इसी आधार पर व्यास ने इसे लेखबद्ध किया होगा। महाभारत को लेखबद्ध कब किया गया यह विवाद का विषय बना हुआ है। अपने वर्तमान रूप में महाभारत एक लाख श्लोकों का संग्रह है। महाभारत के रचनाकाल के बारे में भी अनुमान ही लगाया जा सकता है। कुछ हद तक इसकी पूर्व सीमा और अपर सीमा निर्धारित की जा सकती है। महाभारत की पूर्व सीमा 500 ई.पू. मानी गयी है। इसके निम्न आधार हैं

- (1) आश्वलायन गृह्य सूत्र (3-4-4) में भारत और महाभारत दोनों का ही उल्लेख है। इसका समय कम से कम 400 ई.पू. है।
- (2) बौधायन धर्मसूत्र में भी महाभारत की चर्चा है। इनका समय कम से कम 400 ई.पू. है।
- (3) सास (450 ई.पू. के लगभग) के कई ग्रंथ महाभारत पर आधारित हैं। पाणिनी ने भी महाभारत के पात्रों का उल्लेख किया है।
- (4) महाभारत में दस अवतारों के वर्णन में बुद्ध का उल्लेख नहीं है। स्पष्ट है यह बुद्ध (563 ई.पू. 483 ई.पू.) के समय से पूर्व की रचना है।

कतिपय श्लोकों से स्पष्ट हैं कि एक लाख श्लोकों वाला महाभारत प्रथम शताब्दी ई. में विद्यमान था। इसे महाभारत की अपर सीमा मान सकते हैं।

1. अश्वघोष (78 ई. के लगभग) ने महाभारत का उल्लेख किया है।
2. अनेक विद्वानों ने द्वितीय और तृतीय शताब्दी ई. के बाद एक लाख श्लोकों वाले महाभारत का उल्लेख करने वाले संदर्भों का संग्रह किया है। कुमारिल भट्ट (700 ई.), सुबन्धु (600 ई.), बाण (608- 640 ई) आदि ने भी महाभारत का उल्लेख किया है।
3. भारत के पांचवीं व छठी शताब्दी के शिलालेखों में महाभारत का उल्लेख है। विभिन्न विद्वानों ने इन्हीं तथ्यों को ध्यान में रखा है।

महाभारत का काल 500 या 400 ई.पू. माना जा सकता है। मैकडानल ने इसे 500 ई.पू. और विन्टरनिट्ज ने इसे 400 ई.पू. माना है। श्री आर. जी भण्डारकर का मत है कि ई.पू. 500 तक महाभारत एक प्रसिद्ध धार्मिक ग्रंथ बन चुका था।

समय-समय पर महाभारत में अनेक प्रक्षेप जोड़ दिये गये। इसीलिए यह ग्रंथ इतना व्यापक हो गया। महाभारतकाल के कुछ भागों में भारत में रहने वाली विदेशी जातियों, यूनानी, शक आदि का उल्लेख है। ये जातियां भारत में ई.पू. पहली और दूसरी शताब्दियों में आयी। ई.पू. की प्रारंभिक सदियों में महाभारत के महाकाव्य में परिवर्तन और परिवर्द्धन हो गये थे। इससे स्पष्ट हो जाता है कि ईस्वी सन् की पांचवी शताब्दी के पूर्व ही महाभारत का परिवर्तन

और परिवर्द्धन सम्पूर्ण हो चुका था । यह परिवर्द्धित रूप ईसा पूर्व प्रथम शताब्दी में पूर्ण हो चुका था । महाभारत में 5 वीं 6वीं शताब्दी ई तक परिवर्तन, परिवर्धन और संशोधन होते रहे हैं । इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि वर्तमान रूप में रामायण और महाभारत किसी एक व्यक्ति अथवा एक काल की रचनाएँ नहीं हैं ।

महाकाव्यों में वर्णित सभ्यता किसी एक समय की नहीं है । यह भिन्न-भिन्न कालों की है । कहीं-कहीं पर तो इनमें मानवीय सभ्यता के क्रमिक रूप का चित्रण किया गया है । लेकिन इतना होने पर भी दोनों महाकाव्यों में वर्णित अवस्थाएँ एवं विचारधाराएँ बहुत कुछ समान रूप हैं । (पाण्डेय, विमलचन्द्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास, भाग 1, पृष्ठ 207)

11.4 महाकाव्यों का कथानक

11.4.1 रामायण

रामायण में इक्ष्वाकु वंशीय दशरथ व उसके पुत्रों की कथा है । कौशल नरेश दशरथ के तीन रानियाँ, कौशल्या, सुमित्रा, कैकयी तथा चार पुत्र राम, लक्ष्मण, भरत और शत्रुघ्न थे । वृद्धावस्था में दशरथ अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को राज्य देना चाहते थे । परंतु कैकई ने इसमें बाधा डाली। उसने दशरथ से दो वर मांगे, प्रथम राम के बदले में अपने पुत्र भरत को राजसिंहासन और द्वितीय राम को चौदह वर्ष का वनवास । राम अपनी पत्नी सीता और छोटे भाई लक्ष्मण के साथ वन में चले गये । भरत ने राजपद ग्रहण नहीं किया । पुत्र के वियोग में दशरथ की मृत्यु हो गयी । राम सीता व लक्ष्मण के साथ दुःख झेलते हुए दक्षिण तक बढ़ गये । लंका के राजा रावण ने सीता का अपहरण किया । राम ने वानरों के नेता हनुमान और राजा सुग्रीव की सेना की सहायता से रावण पर आक्रमण किया । अंत में रावण पराजित हुआ और राम सीता व लक्ष्मण के साथ अयोध्या लौट आये । रावण के यहां रहने से सीता की आलोचना हुई । राम ने गर्भवती सीता को त्याग दिया । वह ऋषि वाल्मिकी के आश्रम में रहने लगी । वहां उसने लव व कुश को जन्म दिया' । राम ने जब अश्वमेघ यज्ञ किया तब लव-कुश ने यज्ञ के घोड़े को रोक लिया । राम की सेना व लव कुश में युद्ध हुआ। अंत में राम स्वयं उनसे मिलने आये और उनको अयोध्या ले गये ।

11.4.2 महा भारत

महाभारत का कथानक इस प्रकार है । हस्तिनापुर के राजा शांतनु के पौत्र धृतराष्ट्र और पाण्डु थे । धृतराष्ट्र जन्म से अंधे होने के कारण पाण्डु राजगद्दी पर बैठे । धृतराष्ट्र के पुत्र कौरव तथा पाण्डु के पुत्र पाण्डव कहलाये । पांच पाण्डव थे, इनमें युधिष्ठिर बड़े थे । कौरव सौ थे तथा दुर्योधन बड़ा था । प्रारंभ से ही इनमें वैमनस्य था । पाण्डवों को राज्य से निकालना, द्रोपदी का अर्जुन से विवाह, पाण्डवों द्वारा इंद्रप्रस्थ को राजधानी बनाना, पांडवों का जुए में हारना, पुनः 13 वर्ष का वनवास, पुनः राज्य प्राप्ति हेतु श्रीकृष्ण की मध्यस्थता के प्रयास परन्तु असफलता के कारण महाभारत का युद्ध, श्रीकृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश, पाण्डवों की विजय, युधिष्ठिर द्वारा अश्वमेघ यज्ञ करना, पाण्डवों का परीक्षित को राज्य सौंपकर

हिमालय में जाना व वहीं उनका देहावसान होना आदि प्रमुख घटनाओं का महाभारत में उल्लेख हुआ है ।

11.5 महत्व

दोनों महाकाव्य ऐतिहासिक, साहित्यिक, दार्शनिक व धार्मिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । भारतीय संस्कृत साहित्य की ये सर्वोत्कृष्ट कृतियां हैं । भारतीय साहित्यकारों के लिये ये प्रेरणा स्रोत हैं । भारतीय नीति और दर्शन के भी ये मूल स्रोत हैं । महाभारत को समस्त दर्शनों का सार, स्मृतियों का विवेचन ग्रंथ एवं पंचम वेद माना गया है । वैष्णव, शैव व अन्य धर्मों पर भी ये प्रकाश डालते हैं । महाभारत में कर्म, तप, ज्ञान, भक्ति आदि का समावेश है ।

सांस्कृतिक दृष्टि से रामायण के बाद महाभारत का ही स्थान आता है, लेकिन वास्तविक दृष्टि से महा भारत रामायण से भी बढ़ कर है । भगवद्गीता हिन्दुओं की आचार संहिता ही नहीं वरन् वेद के समकक्ष एक धर्मग्रंथ है । महाभारत में विभिन्न संस्कृतियों का समन्वय दिखाई देता है । दण्ड नीति की विस्तृत व्याख्या हुई है । राजधर्म का उपदेश भी इसमें दिया गया है । साध ही मोक्ष- धर्म की भी चर्चा हुई है । इसमें एक तरफ कर्ममार्ग है तो दूसरी ओर ज्ञान मार्ग भी है । एक तरफ श्रीकृष्ण, भीष्म, अर्जुन, युधिष्ठिर जैसे अनुकरणीय पात्र हैं तो दूसरी ओर दुःशासन, शकुनि जैसे पात्र भी हैं ।

रामायण भारतीय संस्कृति का दर्पण है । यह उच्च मानवीय आदर्शों से ओत-प्रोत है । प्रत्येक हिन्दु के घर में यह विद्यमान रहती है ।

रामायण केवल वीर काव्य ही नहीं है, आचार शासक एवं धर्मशासक भी है । इसमें मानव जीवन के विभिन्न आदर्श बताए गये हैं । इसमें प्राचीन भारतीय संस्कृति, धार्मिक जीवन, नैतिक मूल्यों की चर्चा हुई है । सामाजिक दृष्टि से यह पति-पत्नी के संबंध, पिता-पुत्र के कर्तव्य, गुरु-शिष्य का पारस्परिक व्यवहार, भाई का भाई के प्रति कर्तव्य, व्यक्ति का समाज के प्रति उत्तरदायित्व, आदर्श पिता-माता, पुत्र- भाई -पति एवं पत्नी का चित्रण, आदर्श ग्रहस्थ जीवन की अभिव्यक्ति करता है । इसमें राजा का प्रजा से सोहार्द्र उल्लेखनीय है । राम राज्य का आदर्श बताया गया है । राजा के कर्तव्य और अधिकार, राजा-प्रजा संबंध, उच्च नागरिकता, सैन्य संचालन आदि विषयों पर भी महत्वपूर्ण प्रकाश डाला गया है । इसमें प्राचीन भारतीय सभ्यता, नगर, ग्रामादि, निर्माण सेतुबंध, वर्णाश्रम व्यवस्था आदि विविध पक्षों से संबन्धित विवरण मिलता है ।

दोनों महाकाव्यों में गृहस्थ जीवन के उच्च आदर्शों को अपनाया गया है । इनके अधिकतर पात्र किसी न किसी उच्च आदर्श को स्थापित करते हैं । दोनों महाकाव्यों ने भारतीय सभ्यता और संस्कृति की रक्षा करने में योगदान दिया है । इनमें वर्णित, धर्म, आचार-विचार, संस्थाएँ, प्रथाएँ, प्रणालियाँ और आदर्श सदियों से भारतीयों को प्रभावित करते आ रहे हैं ।

11.6 महाकाव्य: ऐतिहासिक स्रोत के रूप में

तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति व आध्यात्मिक विचारधारणाओं के विषय में बहुमूल्य सामग्री प्राप्त होती है । इनमें ऐतिहासिक घटनाओं के साथ-साथ तत्कालीन

नैतिक, धार्मिक, दार्शनिक, आदर्शों को भी संग्रहीत किया गया है। ऐतिहासिक दृष्टि से श्री राम की दक्षिण यात्रा आर्यों के दक्षिण विजय का प्रथम वर्णन है। यह भी स्पष्ट हो जाता है कि सुदूर दक्षिण में आर्यों के उपनिवेश स्थापित करने में राम अग्रणी रहे। महाभारत में कौरव पाण्डवों के पारस्परिक राजनीतिक संघर्ष का इतिहास है। इसके अलावा इसमें ऐतिहासिक महत्व की घटनाएँ वर्णित की गयी हैं। महाकाव्यों से प्राचीन भारतीय सभ्यता और संस्कृति का संपूर्ण चित्र हमारे समक्ष उपस्थित हो जाता है। अब हम विभिन्न शीर्षकों में इसका वर्णन करेंगे :-

11.6.1 राजनीतिक जीवन:

इस समय तक आर्य लोगों ने पूर्व की ओर अधिक विस्तार कर लिया था। कुरु, पांचाल, कौशम्बी, कौशल, काशी, विदेह आदि इस युग के विशाल राज्य थे। महाभारत की भौगोलिक सीमाएँ रामायण से अधिक व्यापक हैं। साम्राज्य विस्तार की भावना ने जोर किया। श्री राम और युधिष्ठिर ने अश्वमेघ यज्ञ किये। यह यज्ञ साम्राज्यवादी भावना का प्रतीक है। महाभारत में रामायण की अपेक्षा बहुत से क्षेत्रों, जैसे राजनीति, युद्धकाल, कूटनीति आदि में अधिक विकसित सभ्यता दिखाई देती है। महाभारत में विकसित राजनीतिक चिंतन दिखाई देता है। भीष्म को इन विचारों का प्रतिपादक बताया गया है। महाभारत के शांतिपर्व के राजधर्मानुशासन पर्व में महत्वपूर्ण राजनीतिक चिंतन मिलता है। राजसंस्था की उत्पत्ति के बारे में भी विचार विमर्श हुआ है। राजा को महत्वपूर्ण स्थान प्रदान किया गया है। सभा और मंत्रीपरिषद् का राज्य निति निर्धारण में महत्वपूर्ण स्थान था। महाभारत में गणतंत्र पद्धति का भी उल्लेख है। शांतिपर्व के 81 वें अध्याय में अठधक, वृष्णि, यादव कुकुर, भोज इन पांच गुणों के संयुक्त शासन का उल्लेख मिलता है। गणतंत्रों की उन्नति के लिए बहुत सी महत्वपूर्ण बातों का उल्लेख महाभारत में हुआ है। भीष्म-पितामह कहते हैं कि गण के लोगों को आपस में मेल रखना चाहिए, बड़े लोगों को तुरंत ही फूट का अंत कर देना चाहिए, शासकों पर विश्वास रखना चाहिए, कोष भरा रहना चाहिए और सबसे बड़ी बात यह है कि एकता रखनी चाहिए (महाभारत, महापर्व 5)। गणतंत्र शासन व्यवस्था में सत्ता किसी एक व्यक्ति के हाथ में केन्द्रित न होकर विविध जातियों अथवा वंशों के अनेक प्रतिनिधियों के हाथ में रहती थी। महाभारत में कहा गया है कि बहुसंख्यक राजसत्ताधारी प्रतिनिधियों के होने के कारण ही गणराज्यों में बहुधा भेद हो जाता है और उनकी मंत्रणा गुप्त नहीं रह पाती है। (महाभारत शांति पर्व 107,8,24) महाभारत में करों के सम्बन्ध में भी विस्तृत विवेचन मिलती है। भीष्म के निर्देश महत्वपूर्ण हैं। करों को राजा द्वारा की गई प्रजा की रक्षा रूपी सेवा व वेतन माना है। कर न्यायपूर्ण तरीकों से ही लगाने चाहिए। सेना, युद्ध, कूटनीति, गुप्तचर व्यवस्था आदि पर भी महाकाव्यों में विस्तृत विवेचन मिलता है। महाभारत में व्यूहों की रचना, मंडल सिद्धांत, अंतर्राष्ट्रीय संबंधों के छः प्रकार भी बताए गये हैं, जो निम्न है : - संधि, युद्ध, आसन (तटस्थता) यान (सैनिक अभियान), संक्षय (शक्तिशाली राजा की शरण लेना), द्वैधीभाव (कभी शत्रुता और कभी मित्रता का व्यवहार करना)।

11.6.2 सामाजिक जीवन:

रामायण व महाभारत दोनों में ही सामाजिक जीवन व संस्थाओं के बारे में विस्तृत विवेचना मिलती है। रामायण के पात्र पारिवारिक या सामाजिक जीवन के ऊंचे आदर्श प्रस्तुत नहीं करते। महाभारत का महत्व इस काल में है कि उसमें हमें सामाजिक जीवन एवं संस्थाओं के संबंध में महत्वपूर्ण चिंतन मित्रता है।

साधारणतया लोग गांवों में निवास करते थे। गाँव आत्मनिर्भर थे। नगरों का सामाजिक जीवन भी वैभव तथा सम्पन्नता से परिपूर्ण था। जनसाधारण में शाकाहारी भोजन ही अधिक लोकप्रिय था। क्षत्रियों में मांसाहारी भोजन का भी प्रचलन था। लोगों की वेशभूषा सादी थी। अधिकतर सूती, ऊनी, रेशमी वस्त्रों का उपयोग होता था। लोगों का जीवन नैतिकता से ओत-प्रोत था। उनका दृष्टिकोण आशावादी था। महाभारत में भाग्य की अपेक्षा पुरुषार्थ पर बल दिया गया है वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचलन था। रामायण व महाभारत दोनों में ही चारों वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा के विभिन्न अंगों से बतायी गई है। ब्राह्मणों को समाज में उच्च स्थान प्राप्त था। लेकिन इसका आधार, उनका स्वाध्याय, तप तथा अच्छे कर्म थे। रामायण में भी उल्लेख है कि वर्ण के विरुद्ध कार्य करने वाला ब्राह्मण शूद्र से भी अधिक निंदनीय है। (रामायण 3-313) 1117 स्पष्ट हो जाता है कि व्यवस्थाकार पूर्व नियोजित कार्य विभाजन में उजर फेर नहीं चाहते थे। (पाण्डेय, विमल चन्द्र, प्राचीन भारत का राजनीतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास - पृ० 214) महाभारत में क्षत्रियों के लिए वीरता, तेज, धैर्य, दान, युद्ध से न भागना आदि गुण आवश्यक माने गये हैं। दुष्टों का दमन, साधुओं की रक्षा, वर्ण संकर को रोकना ये क्षत्रियों के प्रमुख कर्तव्य माने गये हैं। महाभारत में दोनों वर्णों के बीच सौहार्दपूर्ण संबंध स्थापित करने के प्रयास दिखाई देते हैं। महाभारत में जन्मजात वर्णव्यवस्था के विरुद्ध विद्रोह दिखाई देता है। इसमें शूद्रों की स्थिति में सुधार है। सदाचारी शूद्रों को समाज में सम्माननीय स्थान प्राप्त था। विदुर, कायव्य और भतंग इन तीन जन्मजात शूद्रों को सदाचार के बल पर आदर प्राप्त था। भीष्म शांतिपर्व में राजा की 37 सदस्यों की परिषद में 3 शूद्र अमात्यों की नियुक्ति का भी आदेश देते हैं। यह आवश्यक नहीं है कि एक वर्ण का व्यक्ति दूसरे वर्ण के कार्य नहीं कर सकता। द्रोणाचार्य, अश्वत्थामा, परशुराम, क्षत्रिय के कार्य करते थे। इस समय तक कई विदेशी जातियों (यवन, शक, पड्लव, किरात आदि) का प्रादुर्भाव हो चुका था। ये भारतीय समाज में समाहित हो चुकी थीं। महाकाव्यों में आश्रम व्यवस्था प्रचलित थी। ब्रह्मचर्याश्रम, गृहस्थाश्रम, वानप्रस्थाश्रम, सन्यासआश्रम चारों के लिए 25-25 वर्ष का समय निर्धारित था। गृहस्थाश्रम को शेष अन्य आश्रमों का आश्रम तथा लौकिक जीवन का आधार बताया गया है। यह व्यवस्था व्यवहारतः समाज में प्रचलित थी। वानप्रस्थाश्रम में कभी-कभी महिलाएँ आश्रम प्रणाली के अतिरिक्त समाज में अनेक संस्कार भी प्रचलित थे। यज्ञों का भी प्रचलन था। महाकाव्य काल में यद्यपि स्त्रियों की स्थिति में गिरावट दिखाई देती है। लेकिन कुछ स्त्रियों को उच्च प्रतिष्ठा प्राप्त थी। सीता, सावित्री, देवयानी, कुन्ती, द्रौपदी आदि ऐसी ही स्त्रियाँ थीं।

समाज में बाल विवाह का अभाव था । स्त्रियों का शिक्षा पर ध्यान दिया जाता था । समाज में आठ प्रकार की विवाह प्रथाएँ प्रचलित थीं : - ब्रह्मा, देव, आर्ष, प्राजापत्य, गंधर्व, असुर, राक्षस, पैशाच व अहर्भ्य । ब्राह्म विवाह को ही सर्वश्रेष्ठ माना जाता था । इसमें माता-पिता के संरक्षण में विवाह होता था । समाज में अंतर्जातीय विवाह प्रथा का प्रचलन था । फिर भी प्रतिलोम विवाह प्रणाली दिन-प्रतिदिन कम होती जा रही थी ।

महाकाव्यों में शिक्षा को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । अनावीक्षकी (दर्शनशास्त्र व तर्कशास्त्र), त्रयी (वेद), वार्ता (कृषि, वाणिज्य आदि) और दण्ड नीति (रानीतिशास्त्र) को शिक्षा के पाठ्यक्रम में प्रमुख स्थान प्राप्त था ।

11.6.3 आर्थिक जीवन:

महाकाव्यों में कृषि व पशु पालन का महत्वपूर्ण स्थान था । जाति प्रथा के विकास के साथ-साथ अनेक उद्योगधन्धों का प्रचलन हुआ । इनमें मुख्य थे - जुलाहे, लोहे, शीशे, रांगे आदि धातुओं की वस्तुएँ बनाना, कुम्हार, धोबी, स्वर्णकार, वैद्या आदि । आर्थिक समृद्धि व वैभव कायम था । महाकाव्यों में वर्णित समृद्धि की पुष्टि पुरातात्विक साक्ष्यों से नहीं होती है । विभिन्न व्यवसायों को राज्य का संरक्षण प्राप्त होता था । देश के अधिकांश व्यवसायी श्रेणियों में संगठित थे । इन श्रेणियों के अध्यक्ष थे जो " मुख्य " कहलाते थे । रामायण व महाभारत दोनों में ही श्रेणी मुख्यों का उल्लेख है । लंका से अयोध्या लौटने पर राम का स्वागत श्रेणी मुख्यों ने किया था । रामायण, लंकाकाण्ड 129 महाकाव्यों में वाणिज्य का उल्लेख है । महाभारत में उल्लेख है कि पाण्डवों को उपहार में पूर्वी देशों के हाथी, काम्बोज, गांधार, बाहलीक तथा प्राग्ज्योतिष के घोड़े, पश्चिमी देशों के ऊँट, काम्बोज से रूबी वस्त्र, बाहलीक तथा चीन के रेशमी वस्त्र, सिंधु के शील तथा मूलेच्छ देश के मोती आदि मिले थे । ये वस्तुएँ कृष्ण तथा पाण्डवों के सहयोगी एवं आश्रित राजाओं ने उन्हें दी थी । (महाभारत- आदि पर्व 199, 221, सभापर्व, 28, 30, 31, 49, 51) रामायण में भी काम्बोज और बाहलीक अपने घोड़ों के लिए प्रसिद्ध थे । (रामायण, बालकाण्ड 6) व्यापार, समुद्री मार्ग से होता रहा हो गा । महाभारत में समुद्रयात्राओं का वर्णन है । (महाभारत 3, 6, 4, 23 - 28.)

11.6.4 धार्मिक जीवन:

वैदिक युग से महाकाव्य काल के धार्मिक जीवन में काफी परिवर्तन हुआ था । कई नवीन धार्मिक प्रवृत्तियाँ विकसित हुई । कई नवीन दैवी देवताओं की पूजा प्रारंभ हो गयी थी । बहुदेववाद की प्रवृत्ति का विकास हो गया था । महाकाव्य काल में ईश्वर की तीन प्रमुख शक्तियाँ, सृजन शक्ति, भरण-पोषण शक्ति और संहारक शक्ति के प्रतीक ब्रह्मा, विष्णु और महेश हो गये थे । अवतारवाद की अवधारणा भी विकसित हुयी । ईश्वर के प्रतीक विष्णु का महत्व बढ़ गया था । इस समय यज्ञों का स्वरूप सरल होता दिखायी देता है । उत्तर वैदिक युग के रक्तिम यज्ञों के स्थान पर अब संयम और चरित्र, शुद्धि पर अधिक बल दिया जाने लगा था । यज्ञों का महत्व भी क्रम होने लगा था । इसके स्थान पर उच्च विचार धाराओं का विकास होने लगा था ।

11.7 अनुभागीय इकाई का सारांश

भारतीय जीवन में रामायण और महाभारत का महत्वपूर्ण स्थान है। इन दोनों ग्रंथों का वर्तमान रूप एक ही समय में तैयार नहीं हुआ है। महाकाव्यों से तत्कालीन सामाजिक, आर्थिक राजनीतिक व धार्मिक जीवन की झांकी मिल जाती है। महाकाव्यों में वर्णित, धर्म, आचार विचार संस्थाएँ प्रणालियाँ और आदर्श भारतीयों को प्रभावित करते आ रहे हैं। महाकाव्यों ने भारतीय संस्कृति को जीवित बनाये रखा है। रामायण में इक्ष्वाकु वंशीय दशरथ व उसके पुत्रों की कथा है। दशरथ राम को राजा बनाना चाहते थे, लेकिन उनकी रानी कैकयी भरत को शासक बनाना चाहती थी। उन्होंने राम को चौदह वर्ष का वनवास दिलवाया। सीता का अपहरण लंका के शासक रावण ने कर लिया। रावण पर विजय प्राप्त कर राम, लक्ष्मण सहित अयोध्या लौट आये। रावण के यहां रहने से सीता की आलोचना हुई, इसलिए राम ने उसका परित्याग कर दिया। वाल्मिकी आश्रम में उसने लव-कुश को जन्म दिया। राम ने जब अश्वमेध यज्ञ किया तब लव-कुश ने उनकी सेना के साथ युद्ध किया अंत में राम उनको अयोध्या ले आये। महाभारत में धृतराष्ट्र और पाण्डु की संतान - कौरव और पाण्डवों के संघर्ष की कहानी है। महाभारत की प्रमुख घटनाएँ निम्न हैं - पाण्डवों का राज निष्कासन, द्रोपदी का अर्जुन से विवाह, पाण्डवों द्वारा इन्द्रप्रस्थ को राजधानी बनाना, पांडवों, का जुए में हारना, पाण्डवों का तेरह वर्ष का वनवास, महाभारत का युद्ध, श्री कृष्ण द्वारा अर्जुन को गीता का उपदेश देना आदि। दोनों ही ऐतिहासिक दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। तत्कालीन राज्यों की स्थिति का इसमें अच्छा चित्रण हुआ है। तत्कालीन राजनीतिक चिंतन के बारे में भी इनसे जानकारी हो जाती है।

अभ्यास कार्य

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए :-

1. महाकाव्य क्या है इसकी रचना कब हुई। (100 शब्द)
2. महाकाव्यों के ऐतिहासिक महत्व को बताइए। (500 शब्द)

11.8 अर्थशास्त्र

प्राचीन भारतीय राजनीतिक चिंतन की दो प्रमुख परंपराएँ थी - अर्थशास्त्र परम्परा व धर्मशास्त्र परंपरा। कौटिलीय अर्थशास्त्र - अर्थशास्त्र परंपरा का प्रतिनिधित्व करती है।

11.8.1 अर्थशास्त्र का कृतित्व:

प्राचीन काल से ही कौटिल्य या विष्णुगुप्त या चाणक्य को अर्थशास्त्र का प्रणेता माना जाता रहा है। कौटिल्य का वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था। जिसका उल्लेख कामंदक ने अपने नीतिसार में किया है। बौद्ध तथा जैन साहित्य में चाणक्य के नाम का उल्लेख मिलता है। और उसका चन्द्रगुप्त के साथ संबंध बताया गया है। कादम्बरी मुद्राराक्षस तथा पंचतंत्र आदि में "कौटिल्य" शब्द का प्रयोग मिलता है। स्पष्ट हो जाता है कि विष्णुगुप्त, कौटिल्य, चाणक्य को एक ही व्यक्ति मानना होगा।

भारतीय ऐतिहासिक परम्परा कौटिल्य को चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ संबंध करती है । कौटिल्य के चन्द्रगुप्त मौर्य के साथ घनिष्ठ संबंध थे । विष्णुपुराण में उल्लेख आया है - "कौटिल्य नाम का एक ब्राह्मण नंदवंश का अंत करेगा । नंदवंश का अंत होने पर मौर्य राजा पृथ्वी का भोग करेंगे । कौटिल्य ही चन्द्रगुप्त मौर्य को मगध के राजपद पर अभिषेक करेगा । (विष्णु पुराण 24, 6 - 6) इस कथन की पुष्टि अन्य पुराणों से भी होती है । मत्स्य, ब्रह्माण्ड तथा भागवत् पुराण भी इसी प्रकार का उल्लेख करते हैं । पुराणों के कथन की पुष्टि बौद्ध तथा जैन साहित्यिक परंपरा से भी होती है । इनमें थी चन्द्रगुप्त व चाणक्य का उल्लेख है। कामंदकीय नीतिसार में चाणक्य के बारे में निम्न उल्लेख है : -

नीतिशास्त्रामृत - धीमानर्धशास्त्रमहोदधे ।

समुद्रधे नमस्तस्मै विष्णुगुप्ताय बेधसे ।

इससे स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य का वास्तविक नाम विष्णुगुप्त था । और उसने अर्थशास्त्र की रचना की । दण्डी, बाण, विष्णुशर्मा, विशारवदत्त भी कौटिल्य को अर्थशास्त्र का रचियता मानते हैं । स्पष्ट हो जाता है, कि भारतीय साहित्यिक परंपरा अर्थशास्त्र के निर्माण का श्रेय विष्णुगुप्त या कौटिल्य को देती है । इस कथन की पुष्टि अर्थशास्त्र के आंतरिक साक्ष्य से भी हो जाती है ।

अर्थशास्त्र में कई महत्वपूर्ण उल्लेख प्राप्त होते हैं जिससे हमें इसके रचियता का बोध होता है । इसके प्रथम अधिकरण के प्रथम अध्याय के अंत में कौटिल्य इस अर्थशास्त्र के प्रणेता बताए गए हैं : -

सुखग्रहणविज्ञेयं तत्त्वार्थपदनिश्चितम् ।

कौटिल्येन कृतं शास्त्रं विमुक्तग्रन्थविस्तरम् ॥

श्लोक का अर्थ इस प्रकार से है : "इस अर्थशास्त्र में तत्त्वार्थ और पदों का प्रयोग किया गया है । व्यर्थ विस्तार से यह ग्रंथ सर्वथा मुक्त है । इसे सरलता से समझा जा सकता है । इस अर्थशास्त्र की रचना कौटिल्य ने की है । द्वितीय अधिकरण के 10वें अध्याय के अंत में भी उल्लेख आया है:

सर्वशास्त्राण्यनुक्रम्य प्रयोगयुपलभ्य च ।

कौटिल्येन नरेन्द्रार्थं शासनस्य विधिं कृतः ॥

इस श्लोक का अर्थ इस प्रकार है : - आचार्य कौटिल्य ने सम्पूर्ण शास्त्रों का विधिवत् अध्ययन करके और उसके प्रयोग की अच्छी तरह परीक्षा करके ही राजाओं के लिए इस शासन विधि की रचना की है । "अर्थशास्त्र के 15वें अधिकरण का श्लोक भी दृष्टव्य है । येन शास्त्रं च शास्त्रं च नन्दराजगता च भूः । अमर्षणोदधूतान्याशु तेन शास्त्रमिदम कृतम् ॥

"जिसने शास्त्र, शास्त्र तथा नन्दराजा के अधीन हुई भूमि का क्रोधपूर्वक शीघ्र उद्धार किया, इसी ने इस शास्त्र की रचना की है ।"

उपर्युक्त उद्धरणों से यह स्पष्ट हो जाता है कि कौटिल्य जिन्होंने नंदवंश का उन्मूलन किया था अर्थशास्त्र के प्रणेता है । कौटिल्य ही चन्द्रगुप्त मौर्य के गुरु तथा मंत्री थे । चन्द्रगुप्त

मौर्य का राज्यारोहण 822 ई. पू. माना जाता है। स्पष्ट है कि अर्थशास्त्र का रचना काल भी इसी तिथि के आस-पास है।

11.8.2 अर्थशास्त्र विषयक विवाद:

अर्थशास्त्र और उसके निर्माता कौटिल्य के संबंध में जितना विवाद रहा उससे कहीं अधिक भ्रमपूर्ण धारणाएँ उसके स्थितिकाल के संबंध में प्रचारित हुईं। कौटिल्य के अर्थशास्त्र के संबंध में देशी व विदेशी दोनों विद्वानों में विवाद रहा है। कौटिल्य अर्थशास्त्र के रूप में पं. शामशास्त्री का नाम अमर है। उन्होंने अर्थशास्त्र के संदर्भ में तीन बातों का उल्लेख किया है - चन्द्रगुप्त मौर्य के अमात्य थे, अर्थशास्त्र कौटिल्य की ही कृति है व अर्थशास्त्र का यही प्रमाणिक मूल पाठ है। डॉ. शामशास्त्री ने अपने संस्करण में चाणक्यकृत 571 सूत्रों का संग्रह किया है लेकिन यह कहना कठिन है कि इन सूत्रों का कौटिल्य से क्या संबंध है। चाणक्य की बहुत सी नीतियां प्रचलित हैं। निःसंदेह ये नीतियां कौटिल्य अर्थशास्त्र के बहुत वाद की हैं और कहावतों के रूप में प्रचलित रही हैं। (काणे, पी. वी. धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ. 34)

इतिहासकारों के एक वर्ग ने जिनमें हिलब्रान्ट, याकोबी, स्मिथ आदि हैं। उन्होंने शामशास्त्री के निष्कर्षों से सहमति प्रकट की है। दूसरे वर्ग, - जिसमें डॉ. जाली, कीथ, विंटरनिट्स हैं, के इतिहासकारों ने अर्थशास्त्र और उसकी प्रामाणिकता एवं रचनाकाल के बारे में संदेह प्रकट किया। इनके अनुसार कौटिल्य, ग्रंथाकार का वास्तविक नाम न होकर एक कल्पित नाम है और अर्थशास्त्र तीसरी शताब्दी ई. का रचा हुआ एक जाली ग्रंथ है। "जायसवाल नीलकंठशास्त्री आदि भारतीय विद्वानों ने जाली तथा अन्य विद्वानों के मत का विखंडन किया है। (देखिए डॉ. जायसवाल, हिन्दु राजतंत्र परिशिष्ट 'ग' पहला खण्ड नीलकंठशास्त्री वेद मौर्य, युग, मौर्यन शासन प्रणाली अध्याय)

अर्थशास्त्र के संबंध में इस विवाद का हम विस्तार से- उल्लेख करेंगे। डॉ. जाली के अनुसार कौटिल्य एक काल्पनिक नाम है यह ऐतिहासिक वास्तविकता नहीं है। कौटिल्य का अर्थ कुटिलता है। डॉ. जाली ने मैगस्थनीज व कौटिल्य अर्थशास्त्र की असंगति पर भी बहुत जोर दिया है लेकिन इस संदर्भ में यह ध्यात्व्य है कि मैगस्थनीज की मूत्र कृति हमें उपलब्ध नहीं है। इसके अलावा कौटिल्य एवं मैगस्थनीज के विवरणों में कुछ समानताएँ भी हैं। मैगस्थनीज ने नगर ग्राम आदि के पदाधिकारियों का उल्लेख किया है, जिसकी पुष्टि अर्थशास्त्र भी करता है।

जाली ने अर्थशास्त्र को ई. पू. तीसरी शताब्दी न रखने के संदर्भ में बहुत से तर्क दिए हैं। लेकिन ये सभी एक पक्षीय प्रतीत होते हैं। अर्थशास्त्र के अंतरंग साक्ष्य से यह मनुस्मृति व याज्ञवल्क्य स्मृति से भी प्राचीन रचना लगती है। अर्थशास्त्र में वेद, वेदांग, इतिहास, पुराण, सांख्य, योग, लोकायत आदि का भी उल्लेख है, इससे इसकी प्राचीनता स्पष्ट हो जाती है। भारतीय साहित्यिक परंपरा के साक्ष्य के आधार पर अर्थशास्त्र को चन्द्रगुप्त मौर्य के प्रधानामात्य कौटिल्य की कृति मानना ही उचित है।

11.8.3 अर्थशास्त्र का प्रभाव:

अर्थशास्त्र का संस्कृति साहित्य के रचनाकारों की कृतियों पर पर्याप्त प्रभाव पडा है । इससे अर्थशास्त्र की सार्वभौमिकता स्पष्ट हो जाती है । कालिदास, याज्ञवल्क्य, वात्स्यायन, विष्णुशर्मा, विशाखदत्त, बाण, आदि स्मृतिकारों ने गद्यकारों नाटककारों की कृतियां अर्थशास्त्र से प्रभावित हैं । इसी पूर्व प्रथम शताब्दी से सातवीं शताब्दी ई. की अधिकतर रचनाओं पर कौटिल्य का प्रभाव दिखाई देता है । कालीदास के रघुवंश, कुमारसंभव, अभिज्ञान - शाकुन्तलम्, अर्थशास्त्र से प्रभावित हैं - वात्स्यायन के कामसूत्र व विष्णुशर्मा के पंचतंत्र पर भी अर्थशास्त्र का प्रभाव है । विशाखदत्त के मुद्रा राक्षस व बाण की कादम्बरी भी अर्थशास्त्र से प्रभावित लगती है।

कौटिलीय अर्थशास्त्र व स्मृति-साहित्य में विशेष रूप से साम्यता दिखाई देती है याज्ञवल्क्यस्मृति का व्यवहार विषयद्वय वर्णन कौटिलीय अर्थशास्त्र से काफी साम्यता रखता है । भाषा संबंधी समानता भी दिखाई देती है । संभवतः याज्ञवल्क्य ने ही कौटिलीय अर्थशास्त्र से बहुत सी बातें गृहण की ।

11.8.4 अर्थशास्त्र की विषयवस्तु:

अर्थशास्त्र में कुल 15 अधिकरण, 150 अध्याय, 180 विषय एवं 6000 श्लोक हैं । श्लोक अनुष्टुप् जाति में अधिक है । कौटिलीय अर्थशास्त्र ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है। यह ग्रंथ प्राचीन भारत के सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक एवं धार्मिक जीवन पर मूल्यवान प्रकाश डालता है । इसमें मानव जीवन के विभिन्न विषयों पर प्रकाश डाला गया है । प्रथम अधिकरण में राजा द्वारा शास्त्राध्ययन, आन्वीक्षिकी एवं राजनीति का स्थान, गुप्तचर संस्था, राजा की सुरक्षा आदि पर विचार हुआ है । दूसरे अधिकरण में ग्राम निर्माण, दुर्ग, भूमि, खानों, वनों, आय-व्यय का निरीक्षण आदि का उल्लेख है । तीसरे अधिकरण में न्यायशासक, विधि विवाह के प्रकार, स्त्रीधन आदि से संबंधित वर्णन है । चौथे अधिकरण में कंटक निष्कासन, राष्ट्रीय ' विपत्तियों, राजकीय विभागों की रक्षा विविध प्रकार के दोषों के लिए अर्थ दण्ड आदि का वर्णन है । पांचवें में राजकर्मचारियों के आचरण, वेतन, योग्यताएँ आदि बताई गयी हैं ।

छठे में मंडल रचना, सप्तांग राज्य की अवधारणा, षड्विध राजनीति आदि का उल्लेख है । 7वें में नीति के छः गुण बताए जाते हैं । संधि, विग्रह, यान, आसन-शरण, गहना एवं द्वैधीभाव राजा एवं राजमण्डल आदि का वर्णन है । 8 वें अधिकरण में राजा एवं राज्य के कष्ट आदि के बारे में विवरण है । 9 वें अधिकरण में आक्रमणकारी के कार्य, आक्रमण के समय आदि के बारे में बताया गया है । 10 वें अधिकरण में सेना के अभियान का उल्लेख है । 11 वें अधिकरण में नगरपालिकाओं आदि का उल्लेख है । 12 वें अधिकरण में शक्तिशाली शत्रु के बारे में दूत भेजना, गुप्तचर आदि का उल्लेख है । 13 वें अधिकरण में दुर्ग को जीतना, फूट उत्पन्न करना, विजित राज्य में शांति उत्पन्न करना आदि का उल्लेख है । 14 वें अधिकरण में गुप्त साधन, शत्रु की हत्या के उपाय, औषधियां, मंत्र प्रयोग आदि का वर्णन है । 15 वें

अधिकरण में इस कृति का विभाजन एवं उसकी युक्तियां उल्लिखित हैं । अर्थशास्त्र की विषयवस्तु पर दृष्टिपात करने के बाद यह स्पष्ट हो जाता है कि इसमें विभिन्न विषयों का समावेश है ।

प्राचीन भारतीय सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक, प्रशासनिक पक्षों पर कौटिलीय अर्थशास्त्र से महत्वपूर्ण प्रकाश पड़ता है

11.9 अर्थशास्त्र: ऐतिहासिक स्रोत के रूप में

कौटिल्य ने चारों वेदों, अथर्ववेद, के मंत्र प्रयोग, छः वेदांगों, इतिहास पुराण, धर्मशास्त्र एवं अर्थशास्त्र की चर्चा की है । इसमें सांख्य, योग एवं लोकायत की शाखाओं की ओर भी संकेत आया है । अर्थशास्त्र में ज्योतिष व धातुशास्त्र का भी उल्लेख हुआ है । कौटिल्य के समय संस्कृत ही जन भाषा थी । अर्थशास्त्र में कई भौगोलिक क्षेत्रों का भी उल्लेख हुआ है । इसमें चीन के रेशम एवं नेपाल के कम्बल की चर्चा हुई है । अर्थशास्त्र (11.1) में वृष्टियों के "संघ" कम्बोज एवं सुराष्ट्र के आयुध जीवी (युद्ध जीवी) एवं वार्ताजीवी (कृषि, व्यापार, जीवी) क्षत्रियों की श्रेणियों तथा लिच्छिविद, वृजिक, मल्लक, भद्रक, कुकुर तथा कुरूपन्चालों का वर्णन आया है । कौटिल्य (अर्थशास्त्र 3.13) मलेच्छ जाति का भी उल्लेख करते हैं । जिसमें संतानों की बिक्री हो सकती है और उन्हें बन्धक रखा जा सकता है ।

बौद्धों के विषय में कोई विशिष्ट विवरण नहीं मिलता है । एक जगह यह उल्लेख अवश्य मिलता है कि उस व्यक्ति को एक सौ पण देना पड़ेगा जो अपने घर में देवताओं या पितरों के सम्मान के समय बौद्ध (शाक्य) आजीवक या शूद्र साधु को भोजन के लिए निमंत्रित करता है । (कौ.3 -20) इससे स्पष्ट हो जाता है कि इस समय बौद्धों की सम्माननीय स्थिति नहीं थी।

कौटिल्य को जड़ी बूटियों का आश्चर्यजनक ज्ञान था । कौटिलीय अर्थशास्त्र में एक महत्वपूर्ण बात है दुर्ग में मंदिरों की स्थापना होना । विभिन्न विवरणों से -अर्थशास्त्र की प्राचीनता सिद्ध हो जाती है ।

कौटिल्य ने प्राचीन कालीन: समाज में प्रचलित वर्णाश्रम व्यवस्था का समर्थन किया है। उसके अनुसार वर्णाश्रम से मर्यादित समाज सुखकर और मुक्तिदायी है । (अर्थशास्त्र, पृ० 13.)

प्राचीन शासन व्यवस्था का संपूर्ण चित्र कौटिलीय अर्थशास्त्र में प्राप्त होता है । मंत्रीपरिषद के सहयोग से ही राजा शासन कार्य चलाता था । कौटिल्य मंत्र की गोपनीयता पर भी जोर देते हैं । उनके अनुसार यदि कार्यान्वित होने से पहले ही किसी गुप्त योजना का फूट जाना, राजा और मंत्रीपरिषद दोनों के लिए अनिष्ट का कारण सकता है । (अर्थशास्त्र पृ. 43) अर्थशास्त्र में एक ऐसे विराट साम्राज्य की स्थापना का प्रयास किया गया है जिसकी शासन सत्ता निरकुंश हो । फिर भी उसमें लोककल्याण की भावना विद्यमान रहे । कौटिल्य ने राजा का पहला कर्तव्य प्रजा को प्रसन्न करना माना है । इसके अलावा राजा के प्रमुख कर्तव्य हैं - यज्ञ, प्रजापालन, न्याय, दान, शत्रु मित्र से उचित व्यवहार, विभिन्न विषयों के प्रकांड विद्वानों को उनके उपयुक्त स्थानों पर नियुक्त करना । (अर्थशास्त्र पृ. 63 - 64)

कौटिल्य अर्थशास्त्र में राजदूत को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त है । (अर्थशास्त्र पृ. 50) परराष्ट्र संबंधी कार्यों में वह राजा का प्रतिनिधित्व करता है । गुप्तचरों को भी महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था ।

कौटिल्य अर्थशास्त्र में न्याय व्यवस्था की विस्तार से विवेचना हुई है । न्याय व्यवस्था को दो भागों में बांटा गया है :-

(1) व्यवहार

(2) कण्टकशोधन

नागरिकों के पारस्परिक कलहों के मूल कारणों का पता लगाकर उनकी विवेचना करना और दोषी को दण्ड प्रदान करना व्यवहार के अंतर्गत आता है । कण्टकशोधन का संबंध राजकर्मचारियों से है । साथ ही इसमें पूंजीपति और दुर्जन, लोगों का भी समावेश है । राजकर्मचारियों, व्यवसायियों, दुर्जनों से प्रजा की रक्षा करने के लिए ही कण्टकशोधन स्थापित किए गए थे । समाज में होने वाले शोषणों का कौटिल्य ने बहुत बारीकी से अध्ययन किया है ।

कौटिल्य की दण्ड व्यवस्था के तीन अंश हैं अर्थदण्ड, शरीर दण्ड और कारागार दण्ड । अपराध के अनुसार दण्ड दिया जाता था । अपराधियों के सुधार और बंदीग्रहों की सुव्यवस्था पर भी कौटिल्य ने ध्यान दिया है । कौटिल्य की दण्ड व्यवस्था बहुत वैज्ञानिक है । कौटिल्य ने चार विद्याओं (आन्वीक्षिकी, गमी, वार्ता, दण्डनीति) में दण्डनीति को प्रमुखता प्रदान की है क्योंकि इसके द्वारा ही शेष तीनों विद्याओं का सुविधापूर्वक संचालन किया जा सकता है । (अर्थशास्त्र 12) वास्तव में कौटिल्य की दण्ड-व्यवस्था लोकत्याग के सिद्धांत पर आधारित है ।

अर्थशास्त्र में राजा कानूनों का निर्माण तो कर सकता है, लेकिन वह ऐसा कानून नहीं बना सकता है । जो धर्म के विरुद्ध हो । (अर्थशास्त्र पृ. 259) न्यायिक कार्यों का संपादन सभा करती थी । सर्वप्रधान न्यायाधीश प्राइविवाक होता था । धर्मशास्त्र विभाग का मंत्री होता था जो धर्माधिकारी कहलाता था । न्याय का अंतिम निर्णयकर्त्ता राजा ही होता था । प्रधान न्यायाधीश का कर्तव्य था कि वह प्रत्येक निर्णित मुकदमें का पुनर्निरीक्षण - करे । कौटिल्य की न्याय व्यवस्था बड़ी प्रभावशाली थी । यह कहते हैं - "जब राजा किसी निरपराध व्यक्ति को दण्ड देता है तो उस किये गये अर्थदण्ड का तीस गुना द्रव्य राजा को वरुण देवता के निमित्त जल में फेंकना पड़ता है, जिसे बाद में ब्राह्मणों में बांट दिया जाता है ।" (अर्थशास्त्र पृ.402) दण्ड के समक्ष राजा को भी रियासत नहीं दी जाती थी । कौटिल्य ने स्वयं राजा के लिए भी दण्ड व्यवस्था स्थापित की है । एक सामाजिक व्यक्ति का परिवार के प्रति माता-पिता, पति-पत्नी, पुत्र शासक, शासित, नौकर, श्रमिक, व्यापारी, कलाकार, धोबी, ग्वाला, ग्राहक के प्रति क्या कर्त्तव्य है । इसकी भी व्याख्या कौटिल्य ने की है ।

कौटिल्य की सामाजिक व प्रशासनिक व्यवस्था का आधार आर्थिक व्यवस्था है । कौटिल्य की अर्थनीति के तीन प्रमुख सिद्धांत हैं - प्रथम वर्ग के उद्योगों का संचालन राज्य द्वारा किया गया है । इनमें सोना चांदी, शिलाजीत, तांबा, शीशा, टिन, लोहा आदि आकर उद्योग (Industry of Mines) आ सकते- हैं । दूसरे प्रकार के उद्योगों पर जनता का ही स्वामित्व होता है । इनमें खेती, सूत, शिल्प, गोपालन, अश्वपालन हस्तिपालन, सुरा, मांस,

वेश्यालय आदि को रखा जा सकता है। इन्हें नागरिकों की निजी संपत्ति (Private property) के रूप में माना गया है। कौटिल्य की अर्थनीति का तीसरा सिद्धांत समाज में ऐसी सुव्यवस्था बनाये रखने से संबंध है। जिसके अनुसार राज्य के समस्त उत्पादन (Production) वितरण (Distribution) और उपभोग (Consumption) पर राज्य का नियंत्रण हो। अर्थ-विभाग का सबसे बड़ा अधिकारी समाहार्ता कहा गया है। और भी बहुत से कर्मचारी होते थे। राजकोष की आय का स्रोत उपर्युक्त वर्णित उद्योगों के अलावा अर्थदण्ड, नाम-तौल का कर नागरिकों द्वारा प्राप्त राज्यांश, कृषिकर उपज अंश, बलि कर, धार्मिक कर, वणिक् कर आदि थे। इसके अलावा व्यावसायिक वस्तुओं के आयात-निर्यात से आमदनी होती थी।

11.10 धर्मशास्त्र

11.10.1 धर्म:

वेदों के बाद धर्मशास्त्र ग्रंथों का महत्वपूर्ण स्थान है। इनमें धर्म की व्याख्या की गयी है। इन ग्रंथों को स्मृति नाम से भी जाना जाता है। धर्मशब्द "धृ" धातु से बना है, जिसका तात्पर्य है धारणकरना आलम्बन देना, पालन करना। प्राचीन काल में धर्म का अर्थ "निश्चित नियम" (व्यवस्था का सिद्धांत) या आचरणनियम से भी माना जाता था। धर्मशास्त्र ग्रंथों का प्रणयन उन ऋषियों द्वारा हुआ है जो वेदों के मर्मज्ञ थे। धर्म की परिभाषा में समयानुसार परिवर्तन होते रहते हैं। अंत में धर्म मानव के विशेषाधिकारों, कर्तव्यों, बंधनों का द्योतक, आर्यजाति के सदस्य की आचार-विधि का परिचायक एवं वर्णाश्रम का द्योतक हो गया। (प्रो काणे, धर्म शास्त्र का इतिहास भाग (पृ 02))

धर्मशास्त्रों का धर्म सम्प्रदाय विशेष व्यवस्था आधुनिक अर्थ में समझा जाने वाला धर्म नहीं था। प्राचीन भारत में चार पुरुषार्थों की अवधारणा विद्यमान थी। (धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष) इसी के माध्यम से लौकिक व पारलौकिक उपलब्धियां संभव थी। व्यक्ति का अन्तिम लक्ष्य मोक्ष है व प्रथम तीन पुरुषार्थ उसकी प्राप्ति के साधन हैं। याज्ञवल्क्य ने (याज्ञवल्क्य स्मृति 1/122 व 3/66) सामान्य रूप में धर्म के अंतर्गत नैतिक नियमों का समावेश किया है। अहिंसा, सत्य, चोरी न करना, पवित्रता, इन्द्रियों का संयम, दान देना, दया और धैर्य धारण करना ये सभी व्यक्तियों के लिए धर्म के साधन माने गये हैं तथा कहा गया है कि व्यक्ति को धर्म मन और वचन से यत्नपूर्वक धर्म का आचरण करना चाहिए।

धर्म के इस साधारण रूप के अलावा एक विशेष प्रकार के धर्म का प्रचलन प्राचीन काल में था। जैसे वर्ण धर्म, आश्रम धर्म, राजधर्म, स्मृति धर्म इसके वे कर्तव्य हैं जो वर्णाश्रम धर्म से संबंधित हैं और जिनका उल्लेख स्मृतियों में हुआ है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, शूद्र चारों वर्णों के कर्तव्यों का विधान (निमित्त धर्म आदि)। इसमें वे प्रायश्चित्त होते थे जो निर्धारित कर्तव्यों का पालन न करने के फलस्वरूप करने पड़ते थे।

स्पष्ट हो जाता है कि प्राचीन काल में धर्म के अंतर्गत कर्तव्यों की एक लम्बी श्रृंखला थी। धर्म शास्त्रियों में धर्म का स्वरूप संकीर्ण नहीं हैं, यह समस्त जीवन की आचरण संहिता है। धर्मशास्त्रियों में निम्न विषयों की चर्चा मिलती है - वर्ण आश्रम उनके कर्तव्य, उत्तरदायित्व

एवं विशेषाधिकार, संस्कार (गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक), स्नातक के कर्तव्य, वानप्रस्थआश्रम, संयासआश्रम, विवाह, गृहस्थ के कर्तव्य, शौच, पंच महायज्ञ, दान, शुद्धि, अशौच, सी धर्म, स्त्रीपुंसधर्म, प्रायश्चित, कर्मविपाक, शान्ति ।

11.10.2 धर्मशास्त्रों का परिचय:

धर्मशास्त्रों के अंतर्गत धर्मसूत्र व स्मृतियां आती हैं । धर्मसूत्रों में बहुत से ग्रंथ पाये जाते हैं, जिनमें बौधायन धर्मसूत्र, गौतम धर्मसूत्र एवं आपस्तम्ब धर्मसूत्र प्रमुख हैं । धर्मसूत्रों का रचनाकाल 600 ई.पू. के बीच माना जाता है । स्मृतियों का विकास श्रुति (वेद) से हुआ है । वैदिक परंपरा के साथ-साथ स्मृतियों में देश व काल की परिवर्तित परिस्थितियों का भी चित्रण है । तात्कालीन हिन्दु समाज में धर्म से संबंधित नवीन प्रावधानों को लेखबद्ध करने की इच्छा से स्मृतियों का विकास हुआ ।

स्मृतियों की संख्या बीस से अधिक है - लेकिन प्रमुख स्मृतियां निम्न हैं - मनुस्मृति, याज्ञवल्क्य स्मृति, नारदस्मृति, विष्णु स्मृति, आत्रिस्मृति, हरीत स्मृति, कात्यापन स्मृति, बृहस्पति स्मृति, पाराशर स्मृति, व्यास स्मृति, शंख स्मृति, लिखित स्मृति, दक्ष स्मृति, वशिष्ठ स्मृति । सब स्मृतियों में सर्वाधिक प्रामाणिक और मान्य मनु और याज्ञवल्क्य की स्मृतियां हैं । इनमें मनुस्मृति सर्वाधिक प्राचीन है । इसमें बारह अध्याय हैं । जिनमें आचार, व्यवहार, प्रायश्चित पर विचार किया गया है । मनुस्मृति प्रामाणिक है - अन्य सभी स्मृतियों में इसी को आधार माना गया है । मनुस्मृति को भृगु द्वारा संशोधित माना गया है । मेधातिथि, गोविन्दराज व कुलूक भट्ट ने इसके ऊपर टीकाएँ लिखी हैं ।

मनुस्मृति के बाद याज्ञवल्क्य स्मृति को महत्वपूर्ण माना गया है । इसमें भी तीन कांड हैं - आचार, व्यवहार, प्रायश्चित । याज्ञवल्क्य मनुस्मृति के बहुत से पक्षों पर सहमत हैं, लेकिन वे कई पक्षों पर असहमत भी हैं । वियोग, उत्तराधिकार, जुआ, आदि बहुत से विषयों पर वे मनु से अहसमत हैं । अपर्णाक, मिताक्षरा इसके टीकाकार हैं । इनमें मिताक्षरा सबसे अधिक प्रामाणिक है । नारद स्मृति में व्यवहार पर ही चर्चा की गयी है । नारद मनु के अनुयायी ही प्रतीत होते हैं । नारद स्मृति के व्यवहार के 18 नामों में मनुस्मृति से थोड़ी भिन्नता मिलती है नारद नियोग, स्त्रियों के पुनर्विवाह, जुआ खेलने की कुछ विशेष परिस्थितियों में स्वीकृति देते हैं ।

बृहस्पति स्मृति को रंगास्वामी आयंगर ने संकलित किया है । बृहस्पति स्मृति में 7 कांड हैं - व्यवहार, आचार, संस्कार, श्राद्ध, अशौच, आपदधर्म और प्रायश्चित । इसका अधिकांश भाग गद्य में लिखा गया है, लेकिन कहीं-कहीं पर पद्य भी हैं । बृहस्पति ने मनु का ही अनुगमन किया है उन्हें मनुस्मृति का वर्तिकाकार कहा गया है । बृहस्पति स्मृति मनुस्मृति की ही पूरक मानी जाती है । मनु की तरह बृहस्पति भी नियोग के विरुद्ध है । उन्होंने व्यवहार के अठारह शीर्षकों को दो भागों में विभाजित किया है - चौदह को दीवानी (धनमूलक) व चार को (फौजदारी) में बृहस्पति ने दिव्य भी नौ प्रकार के बताए हैं । कात्यायन स्मृति के व्यवहार काण्ड को पी. वी. काणे ने संकलित किया है । कात्यायन का विवरण मनु, बृहस्पति, नारद व कौटिल्य से काफी समानता रखता है । कात्यापन स्मृति की प्रमुख विशेषता स्त्रीधन की व्याख्या

है । नारद, याज्ञवल्क्य, कौटिल्य व धर्मसूत्राकार, बौधायन व गौतम की तरह कात्यायने कुछ विशेष परिस्थितियों में नियोग का समर्थन करती हैं ।

11.10.3 धर्मशास्त्रों ग्रंथों का निर्माण काल:

धर्मशास्त्र ग्रंथों का निर्माण कब हुआ यह एक महत्वपूर्ण प्रश्न है । यास्क को निरुक्त में उत्तराधिकार के विषय में एक उद्धरण दिया है जिसे ऋचा न कहा जाकर श्लोक कहा गया है। (निरुक्त 3.4.5.) यदि वास्तव में धर्मसंबंधी विषयों के ग्रंथ यास्क के पूर्व विद्यमान थे तो धर्मशास्त्रीय ग्रंथों की तिथि बहुत प्राचीन मानी जायेगी । गौतम, बौधायन तथा आपस्तम्ब के धर्मसूत्र निश्चित रूप से ईसा पूर्व 800 और 300 के बीच के हैं । स्मृति ग्रंथों के निर्माणकाल को लेकर भी बहुत मतभेद है । मनुस्मृति सबसे प्राचीन मानी गयी है । प्रो. काणे ने प्रमुख स्मृतियों का रचनाकाल इस प्रकार माना है - मनुस्मृति 200 ई.पू. से लेकर 100 ई.पू. के मध्य, याज्ञवल्क्य स्मृति 100 ई.पू. से 300 के मध्य, नारद स्मृति 100-400 ई.पू. के मध्य बृहस्पति स्मृति 300-500 ई.पू. के मध्य (धर्मशास्त्र का इतिहास, प्रथम भाग, पृ० 14)

11.11 ऐतिहासिक स्रोत के रूप में धर्मशास्त्र

सामान्यतया यह माना जाता है कि धर्मशास्त्र साहित्य में केवल धार्मिक बातों का ही उल्लेख किया गया है । लेकिन यह धारणा सही नहीं है । प्राचीन काल में धर्म का स्वरूप व्यापक था, जैसा कि हमने पूर्व में उल्लेखित किया है । इसके अंतर्गत संपूर्ण व्यवस्था आती थी। धर्मशास्त्रों में प्राचीन भारतीय सामाजिक आर्थिक धार्मिक व राजनीतिक स्थिति का चित्रण हुआ है ।

गौतम, बौधायन, आपस्तम्ब एवं वशिष्ठ के धर्मसूत्रों में निम्नलिखित विषयों का चित्रण है - वर्णाश्रम व्यवस्था, वर्णों के कर्तव्य एवं उत्तराधिकार, संस्कार (गर्भाधान से अन्त्येष्टि तक) ब्रह्मचारी कर्तव्य; अनध्याय (अवकाश के दिन) स्नातक (जिसका प्रथम आश्रम समाप्त हो जाता था) के कर्तव्य, विवाह, गृहस्थ कर्तव्य (द्वितीय आश्रम), शौच, पंच, महायज्ञ; दान, भक्ष्याभक्ष्य, शुद्धि, अन्त्येष्टि, श्राद्ध, स्त्रीधर्म, स्त्रीपुंस धर्म, क्षत्रियों एवं राजाओं के धर्म; व्यवहार (कानून विधि, अपराध दण्ड, साझा, बंटवारा, दायभाग, गोद लेना, जुआ आदि) चार प्रमुख वर्ण, वर्णसंकर, उनके व्यवसाय; आपदधर्म प्रायश्चित्त कर्मविपाक शांति; वानप्रस्थ कर्तव्य (तृतीय आश्रम) संयास (चतुर्थ आश्रम) । स्मृति साहित्य में भी इन विषयों पर चर्चा की गयी है । स्मृतियों में उपर्युक्त विषयों के अलावा प्रायश्चित्तों का भी विधान है । इनमें राजधर्म, और व्यवहार की भी व्यापक विवेचना हुई है । स्मृति साहित्य में प्राचीन काल की बहुत सी जातियों का उल्लेख भी हुआ है । धर्मशास्त्र साहित्य से प्राचीनकाल की स्त्रियों की स्थिति व शूद्रों की स्थिति का भी बोध हो जाता है । स्मृतियों में आर्यों की प्राचीन राजनीतिक, सामाजिक, धार्मिक, जीवन की संरचना से संबंधित कानूनों का विवेचन है । सभी स्मृति ग्रंथों में व्यक्ति, समाज, वर्ण, जाति, धर्म, राजा के कर्तव्य राजा प्रजा संबंध न्याय विधान आदि पर बहुत से नियम और उपनियम एवं निषेध आदि का विवेचन है । प्राचीन भारतीय धार्मिक प्रथाओं और रूढ़ियों की भी इनमें विवेचना हुई है । स्मृतियों में दीवानी व फौजदारी धार्मिक प्रथाओं और रूढ़ियों की भी

इनमें विवेचना हुई है । स्मृतियों की हम तत्कालीन सामाजिक, आचार-विचार व्यवहार, सामाजिक एवं स्मृतियों तक आते-जाते भारतीय समाज में बहुत से नवीन परिवर्तन उत्पन्न हो गए थे । समाज को नवीन परंपराओं व विचार धाराओं के साथ संगठित करना आवश्यक था । इनके साथ वैदिक परंपरा को भी अक्षुण्ण रखना आवश्क था ।

11.12 स्मृति ग्रंथो में वर्णित जीवन

प्राचीन भारतीय जीवन जो स्मृतियों में दिखाई देता है उसे हम निम्न शीर्षकों के अन्तर्गत रख सकते हैं ।

11.12.1 आर्य संस्कृति का क्षेत्र:

स्मृतियों में प्राचीन भारत की भौगोलिक स्थिति दिखाई देती है । मनुस्मृति में ब्रह्मावर्त, ब्रह्मर्षि देश, मध्य देश और आर्यावर्त का उल्लेख है ।

उत्तरी भारत के ये चार प्रमुख भाग माने गये हैं :- ब्रह्मावर्त प्रदेश सरस्वती नदी और दशव्दती नदी के बीच में था । आधुनिक पंजाब और उत्तरप्रदेश का अवध, रूहेलखण्ड का भाग ब्रह्मर्षि देश कहलाता था । इसमें कुरूक्षेत्र पांचाल मतस्य और शूरसेन नामक आर्यों के राज्य थे। सरस्वती नदी तथा प्रयाग के बीच के क्षेत्र को मध्य देश कहा जाता था । लगभग समस्त उत्तरी भारत को विन्ध्या और हिमालय के बीच के प्रदेश को आर्यावर्त माना जाता था । विष्णु स्मृति में आर्यावर्त का क्षेत्र अधिक व्यापक माना गया । इसमें लगभग समस्त भारतवर्ष सम्मिलित कर लिया गया ।

इससे आभास होता है कि विष्णु स्मृति के रचनाकाल में आर्यसंस्कृति का प्रसार दक्षिण भारत में हो गया था ।

11.12.2 राजनीतिक जीवन:

इस समय देश में कई छोटे-छोटे राज्य थे । प्रत्येक राज्य को "राष्ट्र" कहा जाता था । बडे साम्राज्यों का अभाव था । देश में एक दृढ केन्द्रीय सत्ता और शासन नहीं था । धर्मशास्त्रों में राजा को देव-स्वरूप माना गया है । उसका प्रमुख कर्तव्य धर्म की रक्षा, प्रजा-पालन और रक्षण था । राजा निरकुंश नहीं हो सकता था । मंत्रिपरिषद उस पर नियंत्रण रखती थी । वीरता पूर्वक युद्ध करना और अपने राज्य का विस्तार करना राजा का प्रमुख कर्तव्य था । मंत्रिपरिषद में 7 या 8 अमात्य होते थे । परिषद का प्रधान "मुख्यामात्य" कहलाता था । राज्य विभिन्न प्रशासनिक इकाईयों में विभाजित था । ग्रामणी, दशी, विंशी, शतेश, सहस्त्रेश आदि ग्रामीण पदाधिकारी होते थे । नगरों व ग्रामों की सुरक्षा के लिए सैनिक रखे जाते थे । राज्य की आय का प्रमुख साधन भूमिकर था । मनु ने ब्राह्मणों को राज्य कर से मुक्त माना है । लेकिन विष्णु स्मृति में ब्राह्मणों को कर मुक्त नहीं किया गया है । धर्मशास्त्रों में स्वायत्त शासन भी दिखाई देता है । कुल जाति, श्रेणी, व्यावसायिक संघ आदि के अपने-अपने नियम होते थे । इनके विवादों को हल करने में इनका ध्यान रखा जाता था । राजा के न्यायालय के अतिरिक्त कुल श्रेणी, जनपद आदि के भी न्यायालय होते थे । बृहस्पति स्मृति में (प्रतिष्ठित अचल व अप्रतिष्ठित) अचल दो प्रकार के न्यायालय बताये गये हैं । स्मृतियों में विधि का अठारह शीर्षकों

के अंतर्गत वर्गीकरण मिलता है । अपनी निर्दोषता साबित करने के लिए विभिन्न प्रकार के दिव्यों (परीक्षाओं) का प्रचलन था । न्यायालयों में साक्ष्य की ओर विशेष ध्यान दिया जाता था। याज्ञवल्क्य स्मृति में लिखित प्रमाण (Documentary Evidence) के संदर्भ में विस्तृत स्मृति में लिखित प्रमाण अपराधों के लिए भिन्न-भिन्न दण्डों की व्यवस्था थी । साधारणतया दण्ड विधान कठोर था । मृत्युदंड अंतिम था, उससे पूर्व वाक्, धिक्, धन, दण्ड की व्यवस्था थी ।

11.12.3 सामाजिक जीवन:

धर्मशास्त्रकालीन भारत में दो ही वर्ग महत्वपूर्ण थे आर्य व अनार्य (म्लेच्छ) प्रथम वर्ग स्मृद्ध व सम्पन्न था ।

समाज में ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र चार वर्णों का अस्तित्व था । स्मृति साहित्य में विभिन्न वर्णों के कर्तव्य बताये गये हैं । लोगों का जीवन वर्णों श्रम व्यवस्था पर आधारित होता था । चार आश्रमों का अस्तित्व माना जाता था - ब्रह्मचर्य आश्रम, गृहस्थ आश्रम, वानप्रस्थ आश्रम और संयास आश्रम । प्रत्येक के कर्तव्य व विधि विधानों का उल्लेख स्मृतियों में मिलता है । उपनयन संस्कार के बाद ब्रह्मचर्य आश्रम की शुरुआत मानी गयी है । मनुस्मृति में विद्यार्थी जीवन के विभिन्न नियमों का विशद वर्णन है । विद्यार्थी गुरु-गृह में रहकर, वेदांग, दर्शन, उपनिष आदि का भी उल्लेख स्मृतियों में हुआ है । गृहस्थ को सन्तानोत्पत्ती अतिथि सत्कार, यज्ञ, हवन, अनुष्ठान, विविध संस्कार आदि कार्य संपन्न करने पड़ते थे । वानप्रस्थ व संयास आश्रम, परम ब्रह्म की खोज के लिए था । विभिन्न स्मृति ग्रंथों में स्त्रियों के कर्तव्यों और अधिकारों के विषय में मत प्रतिपादित किये गये हैं । स्त्री के प्रति मनु के विचार अवश्य संकुचित हैं । उन्होंने उसकी स्वतंत्रता का विरोध किया है । उन्होंने बाल-विवाह का भी समर्थन किया है । कन्या-विक्रय की प्रथा भी दिखाई देती है । मनु इसका विरोध करते हैं । वे कहते हैं - एक दास को भी अपनी कन्या के लिए मूल्य नहीं लेना चाहिए । इससे प्रकट होता है कि तत्कालीन समाज में कुछ लोग पर पक्ष से धन लेकर कन्याओं का विवाह करते थे । धर्मशास्त्रों में स्त्री के पतिव्रत्य धर्म और सतीत्व का अधिक महत्व बताया । व्याभिचारिणी स्त्री के लिए कठोर दण्ड व्यवस्था थी । मनु ने विधवा विवाह व नियोग प्रथा का समर्थन नहीं किया है । नारद व याज्ञवल्क्य ने दोनों का समर्थन किया है । स्मृतियों में पर्दा प्रथा का समर्थन नहीं किया गया है । सती प्रथा का भी विस्तृत विवेचन नहीं है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि धर्मशास्त्र काल में इन प्रथाओं का अत्यधिक प्रचलन नहीं था । याज्ञवल्क्य ने विधवा स्त्री के संपत्ति अधिकारों को माना है । वैदिक काल की तुलना में इस समय की स्थिति में गिरावट आ गयी थी । धर्मशास्त्रों में सदाचार का महत्व माना गया है । मनुस्मृति में सदाचार का महत्व बताया गया है । मनु के अनुसार सदाचार से मनुष्य दीर्घायु होता है । अभिष्टसंतान पाता है । और अक्षय धन प्राप्त करता है । धर्मशास्त्रों में जाति प्रथा का भी पूर्ण विकास हो गया था ।

11.12.4 आर्थिक जीवन:

स्मृति साहित्य में ग्रामों के साथ-साथ नगरों का भी विकास हो चुका था । विभिन्न व्यवसायों का विकास हो चुका था । कृषि व पशुपालन तो लोगों का प्रमुख धंधा था ही । इसके

अलावा समाज में विभिन्न प्रकार के उद्योग-व्यवसाय प्रचलित थे । इनमें स्वर्णकार, लोहकार, ठेठेरा, जुलाहा, दर्जी, सुनार, धनुषबाण बनाने वाले आदि मुख्य थे । सोना, चांदी, तांबा, ' आदि विभिन्न प्रकार की धातुओं का भी कार्य होता था । शासकीय नियंत्रण में खानों से बहुमूल्य रत्न और पाषाण निकाले जाते थे । वाणिज्य और व्यापार का विकास भी हो चुका था दुर्भिक्ष के समय व्यापारिक वस्तुएँ विदेशों को नहीं भेजी जाती थीं । वस्तु विनियम के साथ-साथ मुद्राओं का भी प्रचलन था । विष्णुस्मृति में यव, कृष्णाल- याशा, स्वर्ण, निष्क आदि सिक्कों का उल्लेख है । नारद स्मृति में दिनार, पण, कार्षापण नामक मुद्राओं का उल्लेख है । अधिकारियों को वेतन नकदी सिक्कों की अपेक्षा भूमि के रूप में होता था । राज्य की आय का प्रमुख स्रोत भूमिकर था । कुल उत्पादन का 1/4 या 1/8 या 1/16 भूमिकर के रूप में राज्य लेता था । व्यापारिक माल पर थी कर लगता था । स्थान-स्थान पर चुंगी-चौकियां स्थापित कर दी गयी थीं।

11.13 मास का काल

भास प्राचीन काल के संस्कृत के प्रसिद्ध साहित्यकार हैं । महाकवि कालीदास ने अपने नाटक "मालविकाग्निमित्र" में प्रख्यात यश भास का उल्लेख किया है । इससे स्पष्ट हो जाता है कि कालीदास के समय में भारत के नाटक प्रख्यात हो चुके थे । वाणभट्ट ने भी अपने ग्रंथ 'हर्षचरित' की भूमिका में मास के नाटक - गुणों का संक्षिप्त परिचय दिया है । राजशेखर ने भी "स्वप्नवासवदत्त" की स्तुति की है । कवि जयदेव ने भास को कविता कामिनी का हास कहा है - " भासो हासः " । हास्य के प्रतीक विदूषक का अभिनय "स्वप्नवासवदत्त" में प्रशंसनीय है ।

भास के समय का निर्धारण सरल नहीं है । श्रीगणपतिशाली का विचार है कि भास कौटिल्य और पाणिकी से भी प्राचीन है । इन्होंने भास का समय 5वीं श. ईसा पूर्व माना है । डा. बार्नेट के अनुसार भास 7वीं शती के एक केरलीय कवि से अभिन्न हैं । लेस्नी प्रिन्टज सुकंथकर आदि विद्वानों ने मास के नाटकों की भाषा संबंधी अंतरंग परीक्षा के आधार पर माना है कि भास कालीदास से भी प्राचीन है । कौटिल्य ने अपने अर्थशास्त्र में भास के एक श्लोक को उद्धृत किया है । इस आधार पर विद्वानों का विचार है कि भास कौटिल्य से भी पहले हुए थे । भास ने प्रद्योत, उदयन और दर्शक का आपकी रचनाओं में उल्लेख किया है । भास के दो नाटक स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञा यौगन्धरायण ऐतिहासिक घटना पर निर्भर है । भास की पूर्वसीमा भी इनके द्वारा निर्धारित की जा सकती है । भास ने तीन राजाओं का उल्लेख किया है : -

(1) कौशाम्बी के उदयन (2) उज्जयिनी के प्रद्योत (3) मगध के दर्शन । इन तीनों राजाओं का उल्लेख पुराणों, बौद्ध तथा जैन ग्रंथों में मिलता है । उदयन और प्रद्योत समकालीन थे । बौद्ध व जैन ग्रंथों के अनुसार प्रद्योत और अज्ञातशत्रु में दोनो बुद्ध महावीर के समकालीन थे । प्रद्योत-दर्शक और उदयन ये तीनों 475 ई. पू. से 450 ई.पू. के मध्य में समकालीन रहे हैं ।

अतः भास का समय 450 ई. पू. से पहले नहीं माना जा सकता है । पूर्व सिद्ध होता है। संभवतः भास उदयन का आश्रित कवि था । उसने अपने आश्रयदाता को अमर बनाने के

लिए स्वप्नवासवदत्त और प्रतिज्ञायौगन्धरायण - इन दोनों नाटकों की रचना की है । भास का समय 450 ई. पू. के लगभग माना जा सकता है ।

11.14 भास की रचनाएँ

भास की तेरह रचनाएँ केरल से प्राप्त हुई हैं । 1909 ई. में श्री टी. गणपतिशास्त्री ने ट्रावनकोर राज्य से इन्हें प्राप्त किया, जो इस प्रकार हैं:-

- (1) प्रतिमा
- (2) अभिषेक
- (3) पन्चराग
- (4) मध्यभव्यायोग
- (5) दूत घटोत्कच
- (6) कर्णभार
- (7) दूतवाक्य
- (8) उरुभंग
- (9) बालचरित
- (10) दरिद्रचारुदत्त
- (11) अविभारक
- (12) प्रतिज्ञायौगन्धारयण
- (13) स्वप्नवासवदत्त

प्रमुख नाटकों की विषयवस्तु पर प्रकाश डाला जा सकता है :-

प्रतिमा : इस नाटक में भास ने राम के वन गमन की घटना से लेकर रावण की मृत्यु तक की घटनाओं का वर्णन किया है ।

अभिषेक : राम के अभिषेक का वर्णन किया गया है ।

पन्चराग : जब द्रोण ने पांडवों को आधा राज्य देने के लिए दुर्योधन से कहा । तब दुर्योधन ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि पांच रात्रि में पांडव मिल गये तो मैं उन्हें आधा राज्य दे दूंगा । द्रोण के प्रयत्न से पाण्डव मिल भी गये और दुर्योधन ने उन्हें आधा राज्य दे दिया । महाभारत में इस घटना का उल्लेख नहीं है । मध्यभव्यायोग, दूतघटोत्कच, कर्णभार, । दूतवाक्य, और उरुभंग - ये नाटक महाभारत की विशिष्ट घटनाओं से संबद्ध हैं ।

बालचरित : यह नाटक कृष्ण के बालचरित से संबद्ध हैं ।

दरिद्रचारुदत्त : इसमें चारुदत्त ब्राह्मण जो दरिद्र हैं किन्तु चरित्रवान है, का और नगरवेश्या बसंतसेना के विशुद्ध प्रेम का वर्णन है ।

अविभारक : यह भी प्रेम कथा से संबंधित है ।

प्रतिज्ञायौगन्धारयण : इसमें वत्सराज उदयन के नीतिनिपुण मंत्री यौगन्धारयण की कूटनीतिक चालों का सुन्दर ढंग से प्रदर्शन हुआ है ।

स्वप्नवासवदत्त : यह भास का सर्वाधिक महत्वपूर्ण नाटक है । इसमें वत्सराज उदयन का मगध की राजकुमारी पद्यावती से विवाह का वर्णन मिलता है । वासवदत्ता के जीवित रहते उदयन दूसरा विवाह नहीं करना चाहते थे । पद्यावती से विवाह करने के बाद भी वे वासवदत्ता को भूले नहीं हैं । उदयन के विलासमय जीवन व्यतीत करने के उपरांत आरुणि ने उनका राज्य का अधिकांश भाग छीन लिया था । उदयन के स्वामीभक्त मंत्री यौगन्धरायण मगधराज दर्शक- की बहिन पद्यावती से उदयन का विवाह कराना चाहते थे । उसका एकमात्र ध्येय शत्रु को हराकर राज्य का उद्धार करना है । उसने वासवदत्ता को मृत घोषित करवा कर पद्यावती के आश्रम में रखा । वासवदत्ता के प्रेम में त्याग निहित हैं । जब देश का अधिकांश भाग छिन गया, केवल कौशाम्बी बची, तब उसने पति के सम्मान और प्रजा के हित की रक्त के लिए मंत्री की योजना को सफल बनाने में सहयोग दिया । अंत में उदयन ने सफलता प्राप्त की । वे एक वीर व उदार शासक हैं । उन्होने शत्रु की वीरता को सराहा है । महासेन पद्योत के संदेश में उनकी वीरता की प्रशंसा की गयी है । लेकिन उदयन युद्ध में सफलता का श्रेय प्रद्योत, दर्शक, यौगन्धरायण और रुमण्वान को देते हैं । भास के नाटकों में हास का पुट दिखायी देता है । स्वप्न वासवदत्ता में विदूषक का अस्तित्व है । जो राजा का मनोविनोद करता है । विकृत अंग, वाक्य और वेष से वह दर्शकों को हंसाता है । बसंतक प्रतिभाशाली व प्रत्युत्पन्नभति है । वह उदयन को उचित मंत्रणा थी देता है ।

भास के नाटक ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । तत्कालीन समाज की राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन की झांकी हमें इनसे मिलती है । स्वप्नवासवदत्ता व प्रतिज्ञायौगन्धरायण दोनों का कथानक ऐतिहासिक है । इनमें वत्सनरेश उदयन व वासवदत्ता का प्रेम दर्शाया गया है ।

यद्यपि लेखक ने अपनी कल्पना शक्ति व अलंकारिक भाषाशैली से ऐतिहासिक कथानक चित्रित किया है । प्राचीन भारतीय कवियों का दृष्टिकोण किसी भी ग्रंथ को काव्यात्मक आधार पर उत्कृष्टता प्रदान करना होता था । इसी आधार पर कई स्थानों पर ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा थी कर दी जाती थी।

11.15 इकाई का सारांश व अभ्यास कार्य:

प्रस्तुत इकाई में हमने महाकाव्यों, कौटिलीय अर्थशास्त्र, धर्मशास्त्र व भास के साहित्य की ऐतिहासिक विवेचना की है । महाकाव्यों (रामायण व महाभारत) में भारतीय संस्कृति व सभ्यता समाहित है । आज भी भारतीय समाज में इनका महत्व बना हुआ है । कौटिलीय अर्थशास्त्र मौर्यकाल की रचना है । इसमें प्राचीन भारतीय राजनीतिक व्यवस्था के साथ-साथ सामाजिक व आर्थिक व्यवस्था से संबंधित विवरण भी उपलब्ध होता है । धर्मशास्त्रों में प्राचीन भारतीय धर्म का चित्रण हुआ है । प्राचीन भारतीय धर्म का अर्थ वर्तमान की भांति संकीर्ण नहीं था । धर्म एक व्यवस्था का पर्याय था । जिसके अन्तर्गत व्यक्ति के कर्तव्य-विशेषाधिकार आचार विधि, वर्णाश्रमआदि सभी आ जाते, थे । धर्मशास्त्र साहित्य बहुत हैं । इसके अंतर्गत धर्मसूत्र स्मृतियां आदि आते हैं । लेकिन धर्मशास्त्रों के अंतर्गत मुख्यतः स्मृतियां ही प्रमुख मानी गयी है । स्मृतियों में मनु, याज्ञवल्क्य, नारद, बृहस्पति, कात्यायन की स्मृतियां ही उल्लेखनीय

है । धर्मशास्त्रों में प्राचीन भारतीय सामाजिक व्यवस्था के साथ-साथ राजनीतिक व विधिक व्यवस्था का भी विवरण मिलता है । धर्मशास्त्रों में आर्य संस्कृति के भौगोलिक क्षेत्र का भी परिचय मिलता है । ब्रह्मवर्त, आर्यावर्त आदि नाम भौगोलिक क्षेत्र के ही हैं । देश में कई छोटे-छोटे राज्य विद्यमान थे । सामाजिक क्षेत्र में वर्णाश्रम व्यवस्था का प्रचलन था । नैतिक नियमों के साथ-साथ सदाचार पर जोर दिया गया था । ग्रामों के साथ-साथ नगरों का भी विकास हो चुका था । विभिन्न उद्योग व्यवसाय जैसे स्वर्णकार लोहकार, ठठेरा, जुलाहा, दर्जी आदि का प्रचलन था । खानों से भी धातुएँ निकाली जाती थी । वस्तु-विनियम के साथ-साथ मुद्राओं का प्रचलन भी हो चुका था ।

भास की रचनाएँ भी ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । उनके समय के बारे में विवाद बना हुआ है । ये कालीदास से पूर्व ही ख्याति प्राप्त कर चुके थे । इनकी बहुत सी रचनाएँ हैं, जिनमें प्रतिज्ञायोगन्धरायण व स्वप्नवासवदत्त उल्लेखनीय हैं । इनके कथानक ऐतिहासिक हैं । तत्कालीन समाज का चित्रण इनमें हुआ है ।

अभ्यास कार्य :

निम्नलिखित प्रश्नों का उत्तर दीजिए :-

1. धर्मशास्त्र क्या है? इनकी विषयवस्तु क्या है? (100 शब्द)
2. "स्मृतियां ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । इस कथन की व्याख्या कीजिए । (150 शब्द)
3. महाकवि भास पर एक लेख लिखिए । (200 शब्द)

11.16 प्रासंगिक पठनीय ग्रंथ

1. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, वोल्यूम I, II एवं III
2. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. अर्थशास्त्र आफ कौटिल्य, सं. आर. शामशास्त्री
4. शर्मा, डी.पी, दि रामायण आफ वाल्मिकी
5. मजूमदार, आर. पी., (I) दि क्लासिकल एज (II) दि एज आफ इंपीरियल यूनिटी

इकाई - 12

कालीदास - साहित्य, पुराण व हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति की ऐतिहासिक विवेचना

इकाई संरचना

- 12.0 उद्देश्य
- 12.1 प्रस्तावना
- 12.2 कालीदास
 - 12.2.1 काल निर्णय
 - 12.2.2 कालीदास की रचनायें
 - 12.2.3 कालीदास की रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व
- 12.3 पुराण
- 12.4 पुराणों का ऐतिहासिक महत्व
- 12.5 हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति
- 12.6 प्रयागप्रशस्ति का ऐतिहासिक महत्व
- 12.7 इकाई सारांश व अभ्यास कार्य
- 12.8 प्रासंगिक पाठनीय ग्रंथ

12.0 उद्देश्य

प्रस्तुत इकाई के अध्ययन के बाद आप यह जान सकेंगे कि -

- (1) कालीदास की कौन-कौन सी रचनायें हैं?
- (2) ऐतिहासिक दृष्टि से ये कितनी उपयोगी हैं ?
- (3) पुराण क्या हैं ?
- (4) हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति का क्या महत्व है?

12.1 प्रस्तावना

प्राचीन भारतीय इतिहास के निर्माण के लिए हमें साहित्यिक व पुरातात्विक साक्ष्यों का सहारा लेना पड़ता है। साहित्यिक ग्रंथों में यद्यपि ऐतिहासिक घटनाओं का अलग से उल्लेख नहीं हुआ है फिर भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से ऐतिहासिक तथ्यों की विवेचना हुई है। कालीदास संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि हैं जिन्होंने विशाल साहित्य की रचना की है। इनमें बहुत से ऐतिहासिक तथ्य बिखरे पड़े हैं। तत्कालीन समाज के विभिन्न पहलुओं की झाँकी इनमें मिल जाती है। पुराण साहित्य हमें प्राचीन भारतीय धार्मिक मान्यताओं से परिचित कराता है। इसके अलावा उनसे तत्कालीन भौगोलिक, राजननीतिक सामाजिक स्थिति का भी बोध होता है। हरिषेण गुप्तकालीन कवि हैं। उनकी प्रयाग प्रशस्ति में गुप्त शासक समुद्र गुप्त की उपलब्धियों का बोध होता है। प्रयागप्रशस्ति में वर्णित घटनाओं की पुष्टि अन्य साक्ष्यों से भी हो जाती है।

12.2 कालीदास

कालीदास संस्कृत के सर्वश्रेष्ठ कवि है। उनकी प्रतिमा सर्वतोमुखी है। महाकाव्य, नाटक तथा गीति काव्य सभी क्षेत्रों में उनकी रचनायें अनुपम हैं। कालीदास उस समय के प्रतिनिधि कवि हैं जब भारतीय संस्कृति अपने उत्कर्ष पर थी। ऐसी महान् विभूति के जीवन और स्थान के संबंध में पर्याप्त विवाद है। उनके जीवन के साथ बहुत सी कहानियां घटनाओं के रूप में जोड़ दी गयी हैं। इन कहानियों में प्रारंभ में, उन्हें मूर्ख बताया गया है और बाद में विद्वान। किंवदंती है कि महाकवि कालीदास बाल्यकाल में अत्यंत मूर्ख थे। अपने समय की विदूषी और जानगर्विता विद्योत्तमा नाम की राजकुमारी के साथ उनके विवाह का षडयंत्र रचा गया। पंडितों ने मूक शास्त्रार्थ का आयोजन किया और उसमें कालीदास को विजयी घोषित कराया। विवाहोपरांत पत्नी द्वारा तिरस्कृत होने पर कालीदास ने कालीदेवी की उपासना की और विद्या प्राप्त की। वह अपूर्व कवित्व क्षमता के धनी थे जो अधूरे श्लोक को तत्काल पूरा कर देते थे। उनके ग्रंथों को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने वेदों दर्शनों, उपनिषदों, रामायण, महाभारत, गीता, पुराणों, आयुर्वेद धनुर्धय, संगीत विद्या, ज्योतिष व्याकरण आदि का गम्भीर अध्ययन किया। एक उपाख्यान में यह भी वर्णन आया है कि उनकी हत्या एक लोभी वेश्या द्वारा लंका में कर दी गयी थी। दूसरी ओर यदि उनके ग्रंथों पर विचार किया जाए तो हमें काश्मीर हिमालय, कलिंग, सिंधु, के प्रदेशों की भौगोलिक झांकी प्राप्त होती है। उन्होंने प्रकृति का इतना सजीव चित्रण किया है कि लगता है उन्होंने स्वयं इन स्थानों का भ्रमण किया होगा। तत्कालीन समाज के विभिन्न पहलुओं की झांकी हमें उनकी रचनाओं में मिलती है। महाकवि के जन्म के इतिहास के बारे में निश्चित ज्ञान नहीं है। सम्भवतः उज्जयिनी ही उनका निवास स्थान रहा होगा, क्योंकि इस नगरी में उनकी विशेष रूचि दिखायी देती है।

12.2.1 काल निर्णय

भारतीय जनश्रुति के अनुसार कालीदास विक्रमादित्य की सभा के नवरत्नों में से थे। विक्रमादित्य की उपाधि धारण करने वाला कौन सा शासक था? इस प्रश्न पर भी इतिहासकारों में मत विभिन्न है। कुछ विद्वान उन्हें प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व का मानते हैं। परमारवंशीय महेन्द्रगुप्त के पुत्र विक्रमादित्य प्रथम शताब्दी ईस्वी पूर्व में उज्जयिनी के शासक हुए, जिन्होंने शक विजय के उपलक्ष्य में विक्रम संवत् चलाया। जैन साहित्य में इस विक्रमादित्य का उल्लेख हुआ है। कई इतिहासकार कालीदास को इसी विक्रमादित्य का समकालीन मानते हैं। इस संदर्भ वे कालीदास के ग्रंथ विक्रमोर्वशीय का उल्लेख भी करते हैं। लेकिन यह मत ऐतिहासिक दृष्टि से सही नहीं है।

आधुनिक इतिहासकार उपर्युक्त मत को नहीं मानते हैं। उनके अनुसार कालीदास गुप्त शासक चन्द्रगुप्त द्वितीय (375-413 ई) के समकालीन थे। कालीदास के ग्रंथ मालविकाग्निमित्र का नायक अग्निमित्र था और एहोल प्रशस्ति में इन्हें कवि स्वीकार किया गया है। स्पष्ट है कि कालीदास को अग्निमित्र (150 ई. पू.) और एहोल अभिलेख (634 ई) के बीच में रखा जा सकता है। इनका नाम उस समय तक प्रसिद्धि पा चुका था। अन्तेकर के

अनुसार कालीदास की उपयुक्त तिथि 4 थी श. ई. के अंत में है। (दि वाकाटक गुप्त एज, पृ. 405) डा. देवस्थली कालीदास का समय 100 ई. पू. से 450 ई के बीच निर्धारित करते हैं। (दि क्लासिकल एज पृ. 303) लेकिन कालीदास की रचनाओं के आंतरिक साक्ष्य से स्पष्ट हो जाता है कि कालीदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन थे। "विक्रमादित्य" का विरुद्ध-धारण करने वाला कालीदास की रचनाओं पर बौद्ध कवि अश्वघोष (प्रथम शताब्दी ईस्वी) की रचनाओं का प्रभाव स्पष्ट दिखायी देता है। इससे स्पष्ट हो जाता है कि कालीदास अश्वघोष के बाद में हुए थे। कालीदास रघुवंश में 'हूण' नामक जाति का उल्लेख करते हैं। यह जाति गुप्त काल में ही भारत आयी थी। परंपरा के अनुसार वे विक्रमादित्य के दरबारी कवि थे। चन्द्रगुप्त द्वितीय को ही उपाधि विक्रमांक अथवा विक्रमादित्य थी। वासुदेव विष्णु मिराशी का अनुमान है कि इस सम्राट ने कालीदास को अपने नाती प्रवरसेन द्वितीय का शिक्षक नियुक्त किया था। यही नरेश सुप्रसिद्ध ग्रंथ 'सेतुबन्ध' का प्रणेता था। सेतुबन्ध के टीकाकार ने लिखा है कि ग्रंथ की रचना के समय प्रवरसेन से अशुद्धियाँ हो रही थीं। फलतः महाराजाधिराज विक्रमादित्य की आज्ञा से कालीदास ने प्रवरसेन के निमित्त इस ग्रंथ का प्रणयन किया।

(इह तावन्महाराजप्रवरसेन निमित्त महाराजाधिराज

विक्रमादित्येनाज्ञतौ निखिलकविचक्रचूडामणिः

कालिदासमहाशयः सेतुबन्धप्रबन्ध विकीर्णः सेतुबन्ध, पृ. 3)

कालीदास ने 'कुन्तलेश्वरदौत्य' नामक काव्य भी लिखा था। लेकिन इसकी कोई भी पाण्डुलिपि प्राप्त नहीं हुयी है। इसके एक श्लोक को क्षेमेन्द्र ने अपने औचत्यविचरिचर्चा नामक ग्रंथ में, उद्धृत किया है। इन श्लोकों से स्पष्ट हो जाता है कि विक्रमादित्य नामक नरेश ने कालीदास को अपना राजदूत बनाकर कुन्तल प्रदेश के शासक के पास भेजा था। वहां से आने के बाद कालीदास ने विक्रमादित्य के समक्ष कुन्तल दरबार का वर्णन किया - कुन्तल प्रदेश का प्रतिनिधित्व वर्तमान के कनाडी जिलों के द्वारा किया जाता है। गुप्तकाल में वहां कदम्ब वंश राज्य कर रहा था। इस राजवंश के शासक काकुत्स्थवर्मा की पुत्री गुप्त-राजकुल में ब्याही गयी थी। यह घटना चन्द्रगुप्त विक्रमादित्य के समय की लगती है। कई इतिहासकार यह मानते हैं कि उनकी पत्नी अनन्तदेवी सम्भवतः कदम्ब राजकुल की कन्या रही होगी। कालीदास का कुन्तलेश्वर काकुत्स्थवर्मा रहा होगा। इस प्रमाण से भी कालीदास चन्द्रगुप्त द्वितीय के समकालीन लगते हैं। कालीदास की रचनाओं में जिस सामाजिक जीवन का वर्णन है वह बहुत शांत, सुखी और समृद्ध दिखायी देता है। यह अवस्था चन्द्रगुप्त द्वितीय के ही शासनकाल की है।

12.2.2 कालीदास की रचनायें

कालीदास ने बहुत नाटकों व काव्यों की रचना की है। इन्होंने रघुवंश, कुमारसंभव, ऋतुसंहार और मेघदूत जैसे काव्यों और अभिज्ञान शाकुन्तलम्, मालविकाग्निमित्र, विक्रमोर्वशी नामक नाटकों की रचना की। कालीदास के ग्रंथों से समकालीन समाज की झांकी प्राप्त होती है। इनके ग्रंथों में वैदिक साहित्य, षडदर्शन नाट्यशास्त्र, व्याकरण ज्योतिष शास्त्र तथा

ललितकलाओं की भी विवेचना की गयी है । कालीदास की रचना शैली व विचारधारा दोनों, ही बहुत उत्कृष्ट हैं । इनके विविध अलंकारों के प्रयोग में उपमा का स्थान सर्वोपरी है । एक स्थान पर यदि कोई उपमा प्रयुक्त हुयी है तो वह ' दौबारा अन्य स्थान पर दिखायी नहीं देती है! इनकी प्रमुख रचनाओं का परिचय इस प्रकार है -

ऋतुसंहार - यह गीतिकाव्य है, इसमें ग्रीष्म ऋतु से लेकर बसंतऋतु तक छः ऋतुओं का वर्णन है।

कुमारसंभव - यह महाकाव्य है । इसमें शिव पार्वती के विवाह, कार्तिकेय के जन्म तथा तारकासुर के वध की कथा का वर्णन है । इसमें हिमालय के सौंदर्य का सुंदर चित्रण हुआ है ।

रघुवंश - यह महाकाव्य है । जिसमें सूर्यवंशी राजा दिलीप, रघु, अज, दशरथ तथा राम के वंशज राजाओं का चरित्र वर्णित है । राम के चरित्र का भी वर्णन किया गया है । दिलीप के पुत्र रघु द्वारा भारत की दिग्विजय का उल्लेख किया गया है । कालीदास के इस ग्रंथ से स्पष्ट हो जाता है कि रघुवंशी बहुत उदार तथा - प्रजापालक थे ।

मेघदूत - यह गीतिकाव्य का अनुपम उदाहरण है । इसमें एक यक्ष वर्षा ऋतु आने पर मेघ के द्वारा अपनी प्रिया को संदेश भेजता है ।

कालीदास ने बहुत सें नाटक भी लिखे हैं जिनमें निम्नलिखित महत्वपूर्ण हैं -

मालविकाग्निमित्र - यह एक ऐतिहासिक नाटक है । इसका विषय शुंगवंशीय राजा अग्निमित्र तथा मालविका की प्रेम कथा है । मालविका एक परिचारिका है जो अपने सौंदर्य से अग्निमित्र को प्रभावित करती है । यह एक उत्कृष्ट नाटक है जिसके संवाद बहुत आकर्षक हैं । शुंगकालीन इतिहास की कई महत्वपूर्ण सूचनायें इस नाटक से मिलती हैं । मौर्य साम्राज्य के बाद शुंग एक महत्वपूर्ण शक्ति के रूप में उदित हुए । पुष्यमित्र मगध साम्राज्य की सैनिक शक्ति को सफलतापूर्वक सिंधु के तट तक ले गया और अपनी विजयों की पूर्णाहुति उसने दो अश्वमेघ यज्ञों से की । (मजूमदार, रमेशचन्द्र : प्राचीन भारत पृ. 94) पतंजलि का महामाकाव्य व मालविकाग्निमित्र से भी इस तरह से संकेत मिलते हैं । मालविकाग्निमित्र में उल्लेख है कि पुष्यमित्र 'के वीर पौत्र और विदिशा के शासक अग्निमित्र के पुत्र वसुमित्र ने यज्ञ के घोड़े की रखवाली का काम किया था । साथ ही उसने सिंधु तट पर यवनों से घोर युद्ध कर उसकी रक्षा की । शुंग शासनकाल में यवनों से निरंतर लड़ाईयां होती रहीं । यह वह समय था जब मगध का राजनीतिक प्रभुत्व क्षीण होता जा रहा था । विदेशी आक्रमण और सत्ता के लिए संघर्ष यही पाटलिपुत्र की नियति बन गयी थी । सर्वत्र स्वतंत्र राज्य उदित हो रहे थे जिनमें राजतंत्र-दमक के साथ-साथ लोकतंत्रत्मक स्वरूप के भी थे ।

विक्रमोर्वशीय - इस नाटक में राजा पुरूरवा तथा उर्वशी अप्सरा के प्रेम की कथा का वर्णन है ।

अभिज्ञानशाकुन्तलम् - यह समरस संस्कृत साहित्य का सर्वोत्कृष्ट नाटक है । इसमें हस्तिनापुर के शासक दुष्यंत तथा शकुन्तला के प्रेम वियोग तथा पुनर्मिलन को दर्शाया गया है । अभिज्ञानशाकुन्तलम् में संवाद रोचक, स्वाभाविक तथा चित्रत्मक है । इस नाटक में प्रकृति का भी सजीव चित्रण किया गया है । प्रकृति का मानव भावनाओं के साथ तादात्म्य स्थापित किया गया है । कालीदास सौंदर्य का सजीव चित्रण किया गया है । नारी सौंदर्य में भी उनकी रुचि है।

सौंदर्य से तात्पर्य शारीरिक सौंदर्य ही नहीं है वरन् स्त्री का सच्चा सौंदर्य चरित्र है । कालीदास ने नारी को भोग्या नहीं माना है वरन् उसे 'गृहिणी' सचिव तथा सखा के रूप में देखता है । कालीदास ने अपनी रचनाओं में सच्चे प्रेम का आदर्श प्रस्तुत किया है । कालीदास स्वच्छंद प्रेम का समर्थन नहीं करते हैं । उनके अनुसार केवल विषयवासना से युक्त प्रेम ही सच्चा नहीं है । वियोग के अग्नि में वासना के जल जाने पर ही सच्चा प्रेम निखरता है ।

12.2.3 कालीदास की रचनाओं का ऐतिहासिक महत्व

साहित्यिक व सांस्कृतिक दृष्टि से कालीदास की रचनायें महत्वपूर्ण हैं । साहित्यिक क्षेत्र में तो वे अतुलनीय हैं ही वे भारतीय संस्कृति के उत्कर्ष काल का चित्रण करती हैं । उनकी रचनाओं में तत्कालीन सामाजिक, राजनीतिक तथा धार्मिक जीवन का सच्चा चित्रण मिलता है । तत्कालीन सामाजिक जीवन वर्णव्यवस्था पर आधारित था । समाज में चार प्रमुख वर्ण थे । ब्राह्मण, क्षत्रिय वैश्य और शूद्र । सभी लोगों के कर्म उनके वर्णों के अनुरूप होते थे । परंपरागत जीविका के माध्यम को छोड़ा नहीं -जाता था । लेकिन परिवर्तनशीलता भी परिलक्षित होती है । वर्णव्यवस्था के बंधनों की कठोरता कम हो गयी थी । व्यवसाय का चयन समय एवं परिस्थितियों के अनुसार निर्धारित होने लगा था । प्राचीन मान्यताओं का परित्याग कर नवीन वातावरण एवं परिस्थितियों के सांचे में ढलने का सुंदर उल्लेख मालविकाग्निमित्र में मिलता है । इसमें परिपार्श्वक सूत्रधार से यह प्रश्न करता है कि भास, सौमिल्लक एवं कतिपुत्र सह यशस्वी प्राचीन कवियों के नाटकों को छोड़कर लोग आजकल के इस नए कवि कालीदास के नाटक को क्यों खेलने जा रहे हैं । इस पर सूत्रधार उसे फटकारता हुआ कहता है - लगता है आपकी बुद्धि कहीं विश्राम करने चली गयी है । देखिए, पुराने होने से ही न तो सब लोग अच्छे हो जाते हैं और न नए होने से बुरे हो जाते हैं - समझदार लोग तो दोनों की पहले भली-भाँति पहचान करते हैं । उनमें उन्हें जो अच्छा लगता है, उसे वे अपना लेते हैं । परंतु जिनके पारा अपनी बुद्धि नहीं होती, उन्हें दूसरे जैसा समझा देते हैं, उसे ही वे ठीक मान लेते हैं । पुराणमित्येव न साधु सर्व न चापि काव्य नवमित्य - सतः परीक्ष्यान्यतरंभजन्ते मूढः परप्रत्ययनेयबुद्धिः ॥

मालविकाग्निमित्रम्, प्रथम अंक, श्लोक 2 ।

शूद्रक के मृच्छकटिक में भी परिवर्तनशीलता दृष्टिगोचर होती है । इसमें उज्जयिनी के चारुदत्त नामक ब्राह्मण का उल्लेख है जो सार्थवाह (व्यापारी) का कार्य करने लग गया था । कालीदास गुप्तकाल के कवि हैं । इस युग के ठाठवाट एवं समृद्धि का परिचय हमें कालीदास के अलावा वात्सायन के काम सूत्र व शूद्रक के मृच्छकटिक में भी मिलता है ।

कालीदास की रचनाओं में आश्रम व्यवस्था का भी उल्लेख है । भारतीय जीवन में चार पुरुषार्थ - धर्म, अर्थ, काम, मोक्ष । प्रतिष्ठित थे । व्यक्ति का लक्ष्य इनकी साधना होता था । मानव जीवन को चार भागों में बांटा गया था - ब्रह्मचर्य, गृहस्थ, वानप्रस्थ एवं सन्यास । सामान्यतः 25 वर्ष की आयु तक ब्रह्मचर्य, 25 से 50 तक गृह 50 से 75 तक वानप्रस्थ तथा 75 से 100 तक सन्यास आश्रम की व्यवस्था की गयी थी ।

कालीदास कालीन समाज में नारी को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । स्त्रियां शिक्षित होती थीं । अभिज्ञानशकुन्तलम् की शकुन्तला, प्रियंबदा व अनुसूया शिक्षित थीं । स्त्रियां संगीत, चित्रकला आदि में प्रवीण होती थीं । विवाह व्यस्कता प्राप्त कर लेने के उपरांत ही होते थे । गांधर्व विवाहों का समाज में प्रचलन था । समाज. में पर्दा-प्रथा का प्रचलन था । लेकिन यह प्रथा उच्च वर्गों में अधिक प्रचलित थी । अभिज्ञानशकुन्तलम् में शकुन्तला को दुष्यंत के समक्ष पर्दा करते हुए दिखाया गया है । बहुविवाह का भी प्रचलन था । तत्कालीन समाज में आश्रमों को महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त था । आश्रम शैक्षणिक व आध्यात्मिक गतिविधियों के केंद्र थे । इनका वातावरण बहुत शांत होता था ।

कालीदास कालीन आर्थिक जीवन उन्नत था । पाटलिपुत्र व उज्जयिनी दो प्रमुख नगर थे । कालीदास के ग्रंथों में उज्जयिनी की बहुत प्रशंसा हुयी है । कालीदास ने मेघदूत में कहा है कि यह स्वर्ग का चमकता हुआ टुकड़ा है जिसके उपभोग निमित्त देवता लोग स्वर्ग को छोड़कर पृथ्वी पर उतर आए थे ।

कालीदास की सभी रचनाओं में आर्थिक समृद्धि का माहौल दिखायी देता है । शूद्रक के मृच्छकटिक वात्सायन के कामसूत्र व भास की रचनाओं में भी आर्थिक समृद्धि का चित्रण है । उन्होंने भौतिकवाद व आध्यात्मिक मूल्यों के बीच समन्वय स्थापित करने का प्रयास किया है । उनकी रचनाओं में लोक कल्याण का आदर्श ही सर्वोपरि है ।

12.3 पुराण

पुराण का शाब्दिक अर्थ प्राचीन है । इनमें प्राचीन कथानक वंशावली, इतिहास, भूगोल, ज्ञान-विज्ञान आदि सभी प्राचीन तत्वों का समावेश है । पुराणों के संबंध में बहुत सी परिभाषायें दी गयी हैं । जैसे - प्राचीन आख्यान, प्राचीन समय में सजीव संसार की उत्पत्ति और विकास का बोधक, पुरुष और प्रकृति के चिंतन में संलग्न, प्राचीन परंपरा के प्रतिपादन ग्रंथ विश्व रचना का इतिहास आदि । विष्णु पुराण में प्रतिवाद्य विषयों के आधार पर पुराण के लक्षण बताए गए हैं -

सग्श्च प्रतिसर्गश्च वंशो भन्वन्तराणि च ।

वंशानुचरितं चैव पुराण पन्चलक्षणम् । ।

पुराणों में निम्न पांच बातें होनी चाहिए -

(1) सर्ग - सृष्टि की उत्पत्ति का वर्णन (2) प्रतिसर्ग - प्रलय एवं सृष्टि का पुनः प्रादुर्भाव (3) वंश - देवों और ऋषियों की वंशावली (4) मन्वन्तर - प्रत्येक मनु का काल और उस समय की प्रमुख घटनायें (5) वंशानुचरित - सूर्य और चंद्रवंशी राजाओं का जीवन चरित । ये पांचो लक्षण विष्णु पुराण पर ही घटित होते हैं । अन्य पुराणों में इनके अतिरिक्त भी बहुत से विषय शामिल किए गए हैं । जैसे - प्रार्थना, - उपवास, व्रत तीर्थ, 'भौगोलिक स्थान, ज्योतिष, शरीर विज्ञान, आयुर्वेद, व्याकरण, काल शास्त्र आदि का वर्णन ।

पुराणों का रचनाकाल :

इनकी पूर्व सीमा 600 ई. पू. के लगभग है और अंतिम सीमा 800 ई. के लगभग है। धर्मसूत्रों व महाभारत में पुराणों का उल्लेख है । धर्मसूत्रों का समय 500 ई. पू. से पहले का है,

अतः पुराणों का प्रारम्भ लगभग 600 ई. पू. में हुआ होगा। स्पष्ट है कि पुराण सामग्री का निर्माण काफी लंबे समय में हुआ। पुराणों की कुछ सामग्री तीसरी सदी ई. पू. की भी है।

विषयवस्तु :

पुराणों में मुख्य रूप से निम्नलिखित बातों का उल्लेख है:

- (1) किसी देव या देवी का उपासना। उसी को सबसे बड़ी शक्ति मानना।
- (2) ब्रह्मा, विष्णु, महेश में से किसी एक को इष्टदेव मानना।
- (3) सृष्टि की उत्पत्ति, स्थिति और प्रलय का वर्णन करना।
- (4) देवों, ऋषियों और महर्षियों की वंशावली तथा उनका जीवन-वृत्त देना।
- (5) प्रत्येक मनु का नाम, उसका समय, उस समय की प्रमुख घटनायें।
- (6) नंद, मौर्य, शुंग, आंध्र और गुप्त आदि सूर्यवंशी एवं चंद्रवंशी राजाओं का वर्णन।
- (7) व्रत, जाप, उपवास, प्रार्थना, उपासना एवं विभिन्न अनुष्ठानों का वर्णन करना।
- (8) अवतारवाद मूर्तिपूजा की स्थापना।
- (9) सगुणोपासना - व भक्ति मार्ग पर जोर देना।
- (10) दार्शनिक, धार्मिक, राजनीतिक एवं आचार्यशास्त्रीयत्वपूर्ण विषयों का विश्लेषण।
- (11) व्याकरण काव्य, शास्त्र ज्योतिष, शरीर, विज्ञान, आयुर्वेद आदि विषयों से संबंध तथ्यों का संकलन करना।

पुराणों की संख्या :

पुराण साहित्य काफी विस्तृत है। इसमें 18 पुराण एवं 100 से अधिक उप-पुराण आते हैं। यह माना गया है कि प्रारम्भ में केवल एक पुराण था और उसी से संपूर्ण पुराण साहित्य का विकास हुआ। इस एक पुराण की विषय सामग्री के विषय में पुराणों में यह कथा दी गयी है कि ऋषि कृष्ण द्वैपायक ने वेद को चार भागों में विभाजित किया। इसके बाद उन्होंने आख्यानों, उपाख्यानों, गाथाओं एवं कल्पजोरियों से पुराण संहिता की रचना की। अठारह पुराण निम्नलिखित हैं :

- | | | |
|-------------|-----------------|------------------|
| (1) मत्स्य | (2) मार्कण्डेय | (3) भविष्य |
| (4) भागवत | (5) ब्रह्माण्ड | (6) ब्रह्मवैवर्त |
| (7) ब्रह्म | (8) वामन | (9) वराह |
| (10) विष्णु | (11) वायु (शिव) | (12) अग्नि |
| (13) नारद | (14) पद्म | (15) लिंग |
| (16) गरुड | (17) कूर्म | (18) स्कंद |

गरुड पुराण के अनुसार 18 उपपुराणों के नाम इस प्रकार हैं - सनतकुमार, नारसिंह, स्कंद, शिवधर्म, आश्चर्य, नारकीय, कापिल, वामन, औशनस ब्रह्माण्ड, वारुण, कालिडा माहेश्वर, सांभ, सौर, पराशर, मारीच, भार्गव। इनके नाम, संख्या, महापुराण या उपपुराण में गणना हेतु विषय में पर्याप्त मतभेद हैं। विभिन्न पुराणों का संक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है :

(1) विष्णु पुराण

इसके रचयिता पराशर हैं। इस पुराण का साहित्यिक, दार्शनिक और ऐतिहासिक महत्व है। इसमें वैष्णव धर्म की प्रधानता है। इसमें पुराण के सभी लक्षण मिलते हैं। इसमें मौर्य राजाओं की प्रामाणिक वंशावली दी गयी है। शंकराचार्य ने केवल इस पुराण को ही उद्धरण दिए हैं, अन्य किसी से नहीं। प्रामाणिकता व प्राचीनता की दृष्टि से यह उल्लेखनीय है।

(2) भागवत् पुराण :

यह भी वैष्णव धर्म को प्रमुखता देता है। इसमें 12 स्कंधों में 18 हजार श्लोक हैं। इसमें कृष्ण लीलाओं का चित्रण दिया गया है। इसकी शैली अत्यंत परिष्कृत है। बीच-बीच में गम्भीर दार्शनिक विवेचन भी मिलता है।

(3) अग्निपुराण :

उपयोगिता की दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। इसे विश्वकोष कहा जा सकता है। यह संकलन ग्रंथ प्रतीत होता है। इसमें विभिन्न विषयों (काव्य, व्याकरण आयुर्वेद, ज्योतिष, स्थापत्य, वैदिक कर्मकाण्ड) आदि का समावेश है।

(4) मत्स्य पुराण:

ऐतिहासिक दृष्टि से यह महत्वपूर्ण है। इसमें आंध्र राजाओं की प्रामाणिक वंशावली दी गयी है। इसमें दक्षिण भारत की मूर्तिकला, वास्तुकला एवं स्थापत्य कला का सुंदर वर्णन है। इसमें जैन धर्म व बौद्ध धर्म तथा दक्षिण भारत का भी उल्लेख हुआ है।

(5) मार्कण्डेय पुराण :

इसमें इन्द्र, ब्रह्मा, अग्नि और सूर्य दो प्रमुख देवता मानकर उनकी स्तुति की गयी है। देवी दुर्गा की स्तुति भी मिलती है।

(6) भविष्य पुराण:

इसमें भविष्य वाणियाँ हैं। चारो वर्णों के कर्तव्य भी मिलते हैं।

(7) ब्रह्माण्ड पुराण:

इसमें तीर्थ महात्म्य और उपाख्यानो का संग्रह है। इसमें 7 खण्डों में अध्यात्म रामायण भी दी हुयी है।

(8) ब्रह्मवैवर्त पुराण:

इसमें सृष्टि को ब्रह्म का विवर्त माना है। इसमें चार खण्ड हैं - ब्रह्म खण्ड, प्रकृति खण्ड, गणेश खण्ड, और कृष्ण-जन्म खण्ड।

(9) ब्रह्म पुराण:

इसे आदि पुराण भी कहते हैं। इसमें उडीसा के तीर्थों का महत्व वर्णित है।

(10) वामन पुराण :

इसमें विष्णु के वामन अवतार का वर्णन है।

(11) वराह पुराण :

विष्णु के वराहवतार का वर्णन है।

(12) वायु (शिव) पुराण :

इसमें 112 अध्याय हैं।

(13) नारद पुराण :

यह वैष्णव पुराण हैं । इसमें उसूर्वी, पर्वी, समाधि एवं ईश्वर भक्ति से मोक्ष प्राप्ति का वर्णन है ।

(14) पदम पुराण:

केवल इसी पुराण में राधा का कृष्ण की पत्नी होने का उल्लेख है ।

(15) लिंग पुराण :

इसमें शिवलिंग की पूजा पर जोर दिया गया है ।

(16) गरुड पुराण :

इसमें गणित, ज्योतिष, श्राद्ध, तर्पण, व्याकरण आर्युवेद आदि विविध विषयों का वर्णन है ।

(17) कूर्म पुराण :

इसमें शिव के अवतार का वर्णन है ।

(18) स्कंद पुराण :

यह विशालकाय पुराण है, जिसमें शिव भक्ति का वर्णन है । इसमें भारत के सभी तीर्थों का वर्णन है । इसका भौगोलिक महत्व अधिक है ।

12.4 पुराणों का ऐतिहासिक महत्व:

वस्तुतः पुराणों को धार्मिक दृष्टि से ही महत्वपूर्ण माना जाता है । इनमें सनातन धर्म की व्याख्या की गयी है । ब्रह्मा, विष्णु, शिव, गणेश, सूर्य की उपासना पद्धति का प्रामाणिक बोध पुराणों से ही होता है । पुराणों का धार्मिक दृष्टि से ही महत्व नहीं है । वरन् भौगोलिक, सामाजिक, शैक्षणिक व ऐतिहासिक दृष्टि से भी ये महत्वपूर्ण हैं । पुराण प्राचीन भारतीय इतिहास के महत्वपूर्ण स्रोत हैं । बलदेव उपाध्याय (पुराण विमर्श) के अनुसार पुराण वास्तविक इतिहास है । पुराणों में प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति के लगभग हर पहलू से संबंधित विषय सामग्री मिलती है । जैसे - वर्णव्यवस्था, आश्रम व्यवस्था, संस्कार, जातिप्रथा आदि से संबंधित सामग्री पुराणों में बिखरी पड़ी है । प्राचीन भारत के राजनीतिक इतिहास लिखने में 'वंशानुचरित्र का प्रयोग किया जा सकता है । पुराणों में दी गयी राजवंशावली महाभारत युद्ध के बाद परीक्षित के काल तक जाती है । इस वंशावली से प्राचीन भारत के राजाओं का पूर्वापर काल निर्धारित किया जाता है । छठीं सदी ई. पू. से लेकर आंध्र सातवाहन वंश के पतन तक के राजवंशों और उनके राजाओं के नाम पुराणों में मिलते हैं । साथ ही उनके विषय में कहीं-कहीं ऐतिहासिक तथ्य भी प्रस्तुत किए गए हैं । मलय, वायु, ब्रह्माण्ड, 'विष्णु, भागवत, गरुड और भविष्य पुराणों में ऐतिहासिक राजाओं की वंशावली प्राप्त होती है । इतिहास से संबंधित तथ्य भी प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से पुराणों में उपलब्ध होते हैं । भूगोल, आयुर्वेद, नीतिशास्त्र, राजधर्म, शिल्पशास्त्र, नृत्य, संगीत, भवन निर्माण कला आदि विषयों का विस्तृत विवरण भी पुराणों में उपलब्ध है ।

12.5 हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति:

यह गुप्त काल की कृति है। साहित्यिक दृष्टि से गुप्तकाल अत्यंत समृद्ध काल है। इस समय प्रतिभाशाली सम्राट के साथ-साथ कवि, गद्यकार, वैज्ञानिक आदि भी हुए। साहित्यिक क्षेत्र में यह काल पेरिकलीज, आगस्टस, एलिजाबेथ आदि महत्वपूर्ण कालों की याद दिलाता है। इस युग के प्रमुख साहित्यकार हैं - हरिषेण, वीरसेन, वत्समार्द्ध, वासुल भास, कालीदास, शूद्रक, विशाखदत्त, आदि। गुप्तकाल को भारतीय इतिहास का स्वर्णिम काल माना जाता है। इस समय बहुत से साहित्यकारों ने जन्म लिया होगा, लेकिन उनकी पूरी तरह जानकारी हमारे पास नहीं है। बहुत से लेखकों के प्रमाण विनष्ट हो गए हैं।

हरिषेण :

समुद्र गुप्त का परराष्ट्र मंत्री (संधिविग्रहिक सचिव) था। यद्यपि इस कवि की कोई कृति प्राप्य नहीं है। फिर भी प्रयागप्रशस्ति उसके काव्य गुणों को चिरस्मरणीय बनाने हेतु पर्याप्त होगी। निस्संदेह यह प्रशस्तिकार उच्चकोटि का अभिलेख चम्पूशैली साहित्यकार होगा। उन्होंने अन्य ग्रंथों की भी रचना की होगी। इसका प्रथम भाग पद्य में एवं द्वितीय भाग गद्य में लिखा हुआ है। पद्यांश वैदर्भी शैली का दृष्टांत है। इस अभिलेख की कई पंक्तियां खण्डित हो चुकी हैं। अवशिष्ट पंक्तियां उसकी कवित्व क्षमता की परिचायक हैं। इस अभिलेख के श्लोक सुधारा, मन्दाक्रांता एवं शार्दूलविकीडित आदि के सुंदर उदाहरण हैं। इस प्रशस्ति से स्पष्ट हो जाता है कि हरिषेण को प्राचीन भारत की भौगोलिक एवं राजनीतिक अवस्था का अच्छा ज्ञान प्राप्त था। हरिषेण के पिता का नाम ध्रुवभूति था। उनका जन्म खाद्यतपाकिव वश में हुआ था। यह समुद्रगुप्त के दरबार में कुमारामात्य एवं संधिविग्रहिक थे। यह स्तम्भ 35 फीट ऊंचा है। इस बालूदार स्तम्भ का निर्माण अशोक के काल में हुआ। उस समय यह कौशाम्बी में था। इस पर अशोक का एक महत्वपूर्ण अभिलेख उत्कीर्ण है। 7वीं शताब्दी के द्वेनसांग तथा 11वीं सदी के अल्बरूनी ने प्रयाग वर्णन के प्रसंग में किसी अशोक स्तम्भ के वहां होने के कोई प्रमाण नहीं है। यह अनुमान लगाया जाता है कि अकबर अथवा जहांगीर के राज्यकाल में यह इलाहाबाद के किले की शोभा बढ़ाने के लिए लाया गया था। इस पर जहांगीर काल का भी एक लेख मिलता है। अशोक एवं जहांगीर के अभिलेखों के बीच समुद्रगुप्तकालीन लेख प्राप्य हैं। प्रयागप्रशस्ति की प्रारम्भिक पंक्तियां नष्ट हो गयी हैं।

12.6 प्रयागप्रशस्ति का ऐतिहासिक महत्व:

प्रयागप्रशस्ति समुद्रगुप्त कालीन इतिहास का प्रमुख ऐतिहासिक स्रोत है। इस अभिलेख के अभाव में हम समुद्रगुप्त की उपलब्धियों से अनजान रहते। इस अभिलेख में कहां भी तिथि का उल्लेख नहीं है। यह भी उल्लेखनीय है कि इस उल्लेख में कहीं भी अश्वमेध यज्ञ का उल्लेख नहीं है। यही प्रतीत होता है कि अश्वमेध यज्ञ के संपादन से पूर्व उसके राज्यकाल में ही यह अभिलेख उत्कीर्ण हो चुका था। हरिषेण समुद्रगुप्त का आश्रित कवि था, उसने ही अपने जीवन काल में इस प्रशस्ति की रचना की थी।

इस प्रशस्ति के विषय में कहा जा सकता है कि इसमें कवि की चाटुकारिता झलकती है। समुद्रगुप्त के लिए बहुत सी उपलब्धियां बतायी गयी हैं। जैसे - सर्वाटविकराज (संपूर्ण

वनमय प्रदेशों के नरेश), सर्वदक्षिणापथराज-ग्रहणे (संपूर्ण दक्षिण भारतवर्ष के शासकों को पराजित करना) एवं सर्वद्वीपवासी (सभी देशों के निवासी) आदि । इन उपाधियों को अतिरंजित कहा जा सकता है । अन्य कई स्थानों पर भी हरिषेण का वर्णन संतुलित नहीं लगता है । जैसे - समुद्रगुप्त को 'कविराज' कहा गया है और उसके काव्य को 'विद्वानों की जीविका का साधन' बताया गया है । हरिषेण स्वयं भी लिखता है कि परमभट्टारक (समुद्रगुप्त) के चरणों के समीप परिसर्पण (निवास) के कारण उसकी बुद्धि उन्मीलित हो गयी थी । फिर प्राचीन भारत से ही यह प्रवृत्ति रही है कि कवि अपने आश्रयदाता की प्रशंसा में कुछ न कुछ लिखते रहते थे । यह स्वाभाविक भी था । लेकिन यहां यह बात भी दृष्टव्य है कि किसी भी काव्य रचना में उपमा, उत्प्रेक्षा आदि अलंकारों का -प्रयोग किया जाना स्वाभाविक था ।

हरिषेण ने अनुप्रास, उपमा, रूपक का प्रयोग किया है जिसमें समुद्रगुप्त को उत्तराधिकारी बनाए जाने का उल्लेख है । इस अवसर पर वृद्ध चन्द्रगुप्त प्रथम का हृदय आनंद से गदगद हो गया था । हर्ष से शरीर रोमांचित हो गया था । सभा के सभासदों का हृदय आनंद से उच्छवासित हो गया था । उसी वंश के समान अधिकार संपन्न अन्य राजकुमारों के मुख कमल ईर्ष्या एवं दुःख से मुरझा गए थे । ऐसे समय में स्नेह से व्याकुल प्रेमाश्रु से मरे तथा तत्वदर्शी नेत्रों से पुत्र को देखते हुए चन्द्रगुप्त ने कहा था - "हे आर्य! इस प्रकार संपूर्ण पृथ्वी का पालन करो ।" इस श्लोक से पाठकों के समक्ष एक चित्रमय दृश्य उपस्थित हो जाता है ।

(आर्यो हीत्युपगुहम मावषिशुनैरुत्वातैः रोमाभिः

सभ्येपूच्छवसितेषु तुल्यकुलजम्लानाननोव्दीक्षितः ।

स्नेहव्याकुलितेन वाष्पगुरूणा तत्वेक्षिणा चक्षुषा

यःपित्राभिहितो निरीक्ष्य निखिला पाहमेवमुर्वीमिति । ।)

हरिषेण तथा कालीदास की रचनाओं में कई स्थानों पर काफी समानतायें हैं । कालीदास और हरिषेण के दिग्विजय के वर्णन में इसकी समानता है कि मालूम होता है मानो कालीदास के सामने हरिषेण की रचना विद्यमान हो । (वासुदेव उपाध्याय गुप्त साम्राज्य का इतिहास, पृ. 80)

इस आधार पर हम हरिषेण की रचना को ऐतिहासिकता पर संदेह नहीं कर सकते हैं । हरिषेण चूँकि समुद्रगुप्त का समकालीन था इसलिए वह व्यक्तिगत रूप से समुद्रगुप्त की उपलब्धियों से परिचित था । उसके द्वारा वर्णित घटनार्यें व तथ्य ऐतिहासिक हैं ।

इस संदर्भ में उल्लेखनीय है कि प्रशस्ति के वर्णन की पुष्टि समुद्रगुप्त की की मुद्राओं में भी हो जाती है ।

12.7 इकाई सारांश व अभ्यास कार्य:

प्रस्तुत इकाई में हमने कालीदास की रचनाओं की ऐतिहासिक दृष्टि से विवेचना की है । प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के महत्वपूर्ण स्रोत पुराण भी हैं । इनकी संख्या बहुत अधिक है। लेकिन मुख्यतः 18 पुराण ही उल्लेखनीय हैं - वायु, मत्स्य, विष्णु, ब्रह्माण्ड, मार्कण्डेय, गरूड, भगवत्, अग्नि, नारद, वामन कूर्म, पद्म, भविष्य, ब्रह्मवैवर्त, लिंग, स्कन्द, वाराह, शिव । पुराणों की विषय सामग्री को पांच भागों में विभाजित किया जा सकता है - सर्ग, प्रतिसर्ग, वंश,

मन्वन्तर, और वंशानुचरित । पुराणों से प्राचीन राजवंशों की वंशावलियां भी इनमें प्राप्त होती हैं। इसके अलावा नीति, धर्म, नृत्य, संगीत, स्थापत्य आदि का भी इनमें विवरण है । हरिषेण की प्रयागप्रशस्ति भी ऐतिहासिक दृष्टि से बहुत महत्वपूर्ण है । इसके माध्यम से हमें ज्ञात होता है कि हरिषेण गुप्त शासक समुद्रगुप्त का समकालीन था । उसके विवरण के महत्व को हम नजर अंदाज नहीं कर सकते हैं ।

अभ्यासकार्य :

निम्नलिखित प्रश्नों के उत्तर दीजिए -

1. पुराण क्या है ? उनका महत्व बताइए । (100 शब्द)
2. हरिषेण की प्रयाग प्रशस्ति के बारे में आप क्या जानते हैं? (100 शब्द)

12.8 प्रासंगिक पाठनीय ग्रंथ:

1. काणे, पी. वी., धर्मशास्त्र का इतिहास, वोल्यूम I, II, III
2. गैरोला, वाचस्पति, संस्कृत साहित्य का इतिहास
3. मजूमदार, आर. सी., दि क्लासिकल एज
4. कालीदास और उनका युग, भारतीय विद्या भवन
5. गोयल, श्रीराम, गुप्त और वाकाटक साम्राज्यों का युग

इकाई 13

फाहियान, युवानच्वांग और ई-त्सिंग की भारत यात्रा वृतांत

इकाई की रूपरेखा

- 13.0 उद्देश्य
- 13.1 प्रस्तावना
- 13.2 फाहियान
 - 13.2.1 मध्य एशिया
 - 13.2.2 अफगानिस्थान और सीमाप्रांत
 - 13.2.3 भारत में प्रवेश. पंजाब और मथुरा
 - 13.2.4 मध्यप्रदेश
 - 13.2.5 पाटलिपुत्र
 - 13.2.6 कठिनाइयां
 - 13.2.7 विभिन्न संप्रदाय तथा पूजा पद्धतियां
 - 13.2.8 प्रशासन
 - 13.2.9 समाज
- 13.3 युवान - च्वांग
 - 13.3.1 कन्नौज की राजगद्दी पर बैठना
 - 13.3.2 राजनैतिक दशा
 - 13.3.3 विजयें और साम्राज्य
 - 13.3.4 प्रशासन
 - 13.3.5 कन्नौज की महत्ता
 - 13.3.6 कन्नौज की समा
 - 13.3.7 प्रयाग की सभा
 - 13.3.8 हर्ष का धर्म
 - 13.3.9 देश की धार्मिक स्थिति
 - 13.3.10 विद्या का संरक्षक
 - 13.3.11 सामाजिक दशा
 - 13.3.12 आर्थिक दशा
- 13.4 ई -त्सिंग
 - 13.4.1 बौद्ध धर्म
 - 13.4.2 नालंदा विश्वविद्यालय और शिक्षा पद्धति
 - 13.4.3 सफाई व्यवस्था
 - 13.4.4 उत्पादन

13.4.5 वरन

13.4.6 राजनैतिक घटनायें

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न

13.6 संदर्भ ग्रंथ

13.0 उद्देश्य:

- (I) प्राचीन भारतीय इतिहास जानने के श्रोत के रूप में चीनी यात्रियों के वृत्तांतों से अवगत करवाना ।
- (II) चीनी यात्रियों की दृष्टि में भारतीय राजनीति, समाज, धर्म, शिक्षा, अर्थव्यवस्था को समझना।
- (III) प्राचीन भारतीय सभ्यता एवं संस्कृति का विवरण एवं विश्लेषण करना ।

13.1 प्रस्तावना:

चीनी यानी फाहियान, युवान्-च्वांग और ई -त्सिंग पक्के बौद्धभिक्षु थे और भारत में उनके आगमन 'का उद्देश्य बौद्ध-स्थलों की यात्रा करना तथा भारत से बौद्ध ग्रंथों को चीन ले जाना था । वे यहां पर बहुत वर्ष रहे और भाषायें सीखी । उन्होंने अपनी भारत की यात्रा के आधार पर चीनी भाषा में ग्रंथ लिखे । युवान्-भाग द्वारा लिखित सी-यू-की और हुङ्गली द्वारा रचित "युवान्-च्वांग का जीवन-चरित" प्रसिद्ध हैं । इन ग्रंथों का अंग्रेजी में भी अनुवाद हो गया है । ये ग्रंथ ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं । इन चीनी यात्रियों ने भारत में बौद्ध धर्म एवं स्तूपों, विहारों, संप्रदायों, धार्मिक ग्रंथों, कर्मकाण्ड एवं रीति-रिवाजों आदि का व्यापक तथा बारीकी से वर्णन किया है । इनका दृष्टिकोण धार्मिक रहा है । फाहियान और ई-त्सिंग ने तो देश के राजा व राजाओं के नाम का भी उल्लेख नहीं किया है । इसमें संदेह नहीं कि युवान्-भाग ने अपने आश्रयदाता हर्षवर्धन और अन्य समकालीन राजाओं के बारे में रोचक जानकारी दी है । उसने बहुत से राज्यों की राजनैतिक स्थिति का भी उल्लेख किया है जिनमें से वह गुजरा है । इनके बौद्ध धर्म संबंधी कथन को पूर्ण रूप से स्वीकार नहीं किया जा सकता क्योंकि वे अपने धर्म को ही सर्वोच्च समझते थे । उन्होंने प्रसंगवश अपने यात्रा-वर्णन में लोकपरक विषयों पर भी लिखा है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है ।

13.2 फाहियान:

चीनी यात्री फाहियान दस वर्ष (400-411 ई) से अधिक भारत में ठहरा । उसने विशेषकर बौद्ध स्थलों की यात्रा की जिनका उसने विस्तृत रोचक वर्णन किया है । उससे पता चलता है कि बौद्ध धर्म के हीनयान संप्रदाय का अब भी प्रभाव बना हुआ था तथा महायान का उत्थान हो रहा था । उसने बौद्ध-स्तूपों, विहारों, संप्रदायों, भिक्षुओं और श्रावकों का अपने वृत्तांत में उल्लेख किया है । कुछ स्थलों पर तो वह अध्ययन हेतु रुका । फाहियान अपने धार्मिक उद्देश्य में इतना दत्तचित्त रहा कि उसने अपने समय के प्रसिद्ध गुप्तसम्राट चन्द्रगुप्त द्वितीय का नामोल्लेख तक भी नहीं किया । उसने मध्यदेश की राजनैतिक स्थिति का प्रत्यक्ष वर्णन न

करके प्रसंगवश लोगों का किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । वह समुद्र-मार्ग से लंका होता हुआ वापिस चीन लौट गया ।

13.2.1 मध्य एशिया:

फाहियान मध्य एशिया होता हुआ भारत पहुंचा । इस क्षेत्र में उस समय बौद्ध-धर्म का अधिक प्रचार था । वह शानशान गया जहां उसे हीनयान मत के 4,000 बौद्धभिक्षु मिले । खोतान में हजारों बौद्धभिक्षु रहते थे । यहां के राजा और लोग दोनों बौद्ध धर्म के अनुयायी थे । प्रत्येक गृहद्वार के सन्मुख छोटा स्तूप बना होता था । यहां पर चार बड़े विहार थे जिनमें सबसे प्रसिद्ध गोमती विहार था । इस विहार में 3,000 भिक्षु निवास करते थे । यहां पर एक नया मठ भी था जिसके निर्माण में करीब 80 वर्ष लगे । कला एवं स्थापत्य की दृष्टि से यह शानदार भवन था । पूर्वी तुर्कीस्तान के छः राजाओं ने अपनी संपत्ति का बहुत कुछ दान इस विहार को दे दिया । खोतान में बौद्धों का विशाल रथयात्रा का वार्षिक जलूस भी निकलता था । रथ के मध्य में बुद्ध की मूर्ति रखी जाती थी तथा दोनों ओर बौद्धसत्त्व । गोमती के महायान भिक्षु रथ के आगे चलते थे तथा रथ मूर्ति के सम्मुख नमता था । राजा और रानी भी इसमें भाग लेते थे । काशगर में उसने एक हजार बौद्धभिक्षु देखे और वहां का राजा भी बौद्ध था जो हीनयान शाखा का अनुयायी था । भारतीय संस्कृति का मध्य एशिया पर इतना प्रभाव था कि उसने कई बौद्धभिक्षुओं को भारतीय भाषा और पुस्तकें पढ़ते देखा ।

13.2.2 अफगानिस्थान और सीमाप्रांत:

फाहियान ने खोतान से उत्तर-पश्चिमी भारत का सीधा और कम दूरी का मार्ग चुना । इस क्षेत्र के वर्णन से मत होता है कि समस्त क्षेत्र पर बौद्ध धर्म का प्रभुत्व था । अफगानिस्थान में उसने महायान और हीनयान शाखाओं के 3,000 भिक्षु देखे । उसने बन्नू की यात्रा भी की और वहां भी बहुत से बौद्धभिक्षु थे । फाहियान द्वारा अफगानिस्थान के वर्णन से पता चलता है कि यह प्रदेश उत्तर-भारत का अंग था । यहां के लोग मध्य देश की भाषा का प्रयोग करते थे । साधारण लोगों का खानपीन और वस्त्र भी मध्यदेश के लोगों के समान था । उसने गंधार, तक्षशिला और पेशावर की यात्रा की और उन स्थानों पर असंख्य बौद्ध स्मारक थे ।

13.2.3 भारत में प्रवेश: पंजाब और मथुरा:

फाहियान ने भारत में कश्मीर की ओर से प्रवेश किया । पंजाब में उसने कई बौद्ध विहार देखे और इनमें अनुमानतः 10,000 से भी अधिक भिक्षु थे । मथुरा के मार्ग में उसे अनेक बौद्धभिक्षु और मठ दिखे । अनेक स्थानों पर राजा इस धर्म के दृढ़ अनुयायी थे तथा वे भिक्षुओं का सम्मान करते थे । कुछ विहारों की व्यवस्था हेतु भूमि दान देते थे । भिक्षु अनुशासन का पालन करते थे । श्रावक भी चैत्य और स्तूप बनवाते थे और उनकी पूजा करते थे । केवल मथुरा में ही उसने 20 विहार देखे जिनमें 3,000 बौद्धभिक्षु थे ।

13.2.4 मध्य देश

मथुरा से दक्षिण की ओर का प्रदेश मध्यदेश कहलाता था । फाहियान ने इस प्रदेश की भी यात्रा की और वह यहाँ पर पांच वर्ष से अधिक रहा । श्रावस्ती में उसने कई बौद्ध स्मारक देखे । लुंबिनी, वैशाली, नालंदा, बोध गया, राजगृह आदि बौद्ध स्थानों की यात्रा की । श्रावस्ती, बोध गया, कपिलवस्तु और कुशीनगर अब उजाड़ और खाली थे । बहुत थोड़े भिक्षु और उनके सेवक अब भी उनकी पवित्रता और श्रद्धा के कारण वहाँ रहते थे और वे दान पर निर्वाह करते थे। फाहियान के वर्णन से यह पता नहीं चलता कि मध्यदेश में चन्द्रगुप्त के समय ब्राह्मण धर्म मुख्यतः प्रचलित था।

13.2.5 पाटलिपुत्र:

फाहियान पाटलिपुत्र भी गया और वह अशोक के महल से अत्यंत प्रभावित हुआ जो उस समय सुरक्षित था । उसके विचार से कई भवनों वाला महल भूतों ने बनवाया था । अशोक द्वारा बनाया हुआ एक स्तूप भी था । उसने दो विहार भी देखे जिनमें से एक में महायान शाखा के और दूसरी में हीनयान शाखा के बौद्धभिक्षु रहते थे । दोनों विहारों में करीब छः-सात सौ भिक्षु रहते थे । वे अपनी विद्वत्ता के लिए इतने प्रसिद्ध थे कि दूर-दूर से विद्यार्थी एवं जिज्ञासु ज्ञान प्राप्त करने हेतु उनके पास आते थे । स्वयं फाहियान तीन वर्ष यहाँ ठहरकर संस्कृत सीखा और विनय सूत्रों की नकल की । बीस बड़े और सुसज्जित रथों वाले विशाल जलूस की भी उसने बहुत सराहना की । उसमें गायक और संगीतज्ञ भी सम्मिलित होते थे । ताम्रसिप्ति में वह सूत्रों की नकल करने हेतु दो वर्ष रूका ।

13.2.6 कठिनाइयाँ:

फाहियान ने अपने वृत्तांत में मार्ग की कठिनाइयों का भी उल्लेख किया है । कमी-कमी उल्लेख के ऊपर हवा में कोई उड़ता हुआ पक्षी नहीं दिखता था और न जमीन पर कोई पशु । मार्ग के नदी-नालों को पार करने में भी उसे कठिनाइयों का सामना करना पड़ा । मार्ग की यात्रा में जिन दुःखों को सहना पड़ा, वह मानव जीवन में असमानांतर है ।

13.2.7 विभिन्न संप्रदाय तथा पूजा पद्धतियाँ:

फाहियान ने हीनयान और महायान संप्रदायों का विभिन्न स्थानों पर प्रभाव तथा विभिन्न पूजा पद्धतियों का भी उल्लेख किया है । उसने लोबनोर दरड, उद्यान, गंधार, बन्नु, कन्नौज और कौशाम्बी में पूर्ण रूप से हीनयान के सर्वास्तिवाद की लोकप्रियता को देखा तथा अफगानिस्तान, पंजाब (भिंड), मथुरा और पाटलिपुत्र में दोनों हीनयान और महायान संप्रदायों का। लंका में स्थविरवाद का जोर था । सारीपुत्र, मोगालन तथा आनंद और अभिधम्म विनय तथा सूत्रों के रचयिताओं के सम्मान में भी स्तूप बनाए जाते थे । भिक्षुणियाँ आनंद के स्तूपों की पूजा करती थी और नए भिक्षु राहुल के स्तूप की । महायान संप्रदाय के लोग प्रज्ञापार मित्र (तारा), मंजुश्री और अवलोकितेश्वर को उपहार चढ़ाते थे ।

13.2.8 प्रशासन:

देश में शांति, समृद्धि और संतोष था । लोगों की जनसंख्या अधिक थी और वे सुखी थे। ग्रह की रजिस्ट्री नहीं करानी पड़ती थी तथा न न्यायाधीशों के यहां उपस्थिति देनी पड़ती थी और न ही उनके नियमों का पालन करना होता था । जो लोग राज्य की भूमि में खेती करते थे वे उससे प्राप्त लाभ का कुछ अंश देते थे । यदि वे जाना चाहते तो चले जाते थे तथा, रहना चाहते तो रहते थे । प्राण-दण्ड या अन्य शारीरिक दण्ड के बिना ही राजा राज्य करता था । अपराधियों पर उनके अपराध की परिस्थितियों के अनुसार भारी या हल्का जुर्माना लगाया जाता था । बार-बार विद्रोह करने पर, भी केवल उनका दाहिना हाथ काट दिया जाता था । राजकीय कर्मचारियों को निश्चित वेतन दिया जाता था और प्रजा से धन लेकर निर्वाह करने पर उन्हें अवसर नहीं दिया जाता था । क्रय-विक्रय में कौड़ियों का प्रयोग होता था ।

13.2.9 समाज:

जनता साधारणतः शाकाहारी थी और अहिंसा के सिद्धांत का आचरण करती थी । बाजारों में मांस नहीं बिकता था तथा मद्य की दुकानें भी नहीं थीं । लोग सुअर तथा मुर्गी नहीं पालते थे । वे प्याज और लहसुन नहीं खाते थे । वे सुरापान नहीं करते थे । चांडाल समाज से बहिष्कृत समझे जाते थे । वे मांस बेचा करते थे तथा आखेट करते थे । वे नगर से बाहर रहा करते थे तथा अस्पृश्य माने जाते थे । जब वे नगर तथा बाजार में जाते थे तो अपने आने की सूचना में उन्हें लकड़ी से आवाज करनी पड़ती थी, ताकि दूसरे लोग उनके साथ लगकर अपवित्र न हो जाय ।

राजा, वृद्ध तथा भद्र व्यक्ति धार्मिक स्थान बनाते थे । वे भूमि, घर और बाग भी दान में देते थे । खेती के लिए भूमि तथा अन्य आदमी भी देते थे । पक्के पट्टे लिख दिए जाते थे और बाद में राजा भी उनका उल्लंघन करने का साहस नहीं करते थे । लोग सड़कों के किनारों पर या उनसे दूर दानग्रह बनवाते थे जहां यात्री और भिक्षु ठहरते थे । उन्हें कमरे, बिस्तर और भोज्य पदार्थ दिया जाता था । स्थायी भिक्षुओं को विहारों में कमरे दिए जाते थे । उन्हें बिस्तर, चारपाइयां, खाना, पेय पदार्थ आदि भी मिलते थे । वे अपना समय दया-धर्म के काम करने, धार्मिक पुस्तकों का पाठ करने और आत्मचिंतन में व्यतीत करते थे । यदि कोई विदेशी यानी किसी विहार में आता था तो वहां के उच्च पुरोहित उसे अतिथि-गृह तक छोड़ने जाते थे और उसके वस्त्र तथा दान-पान भी उठाते थे । वे उसे पैर धोने के लिए पानी और मालिश के लिए तेल देते थे और उसके लिए विशेष खाना बनाया जाता था ।

फाहियान से ज्ञात होता है कि राजधानियों में धनी लोगों ने निशुल्क औषधालय खोल रखे थे जहां निर्धन व असहाय रोगी, अनाथ, विधवायें और पंगु आते थे और उनकी भलीभाँति से देखभाल होती थी । वैद्य उनकी चिकित्सा करता था । खाना और औषधियां उनको आवश्यकतानुसार निशुल्क दी जाती थी । जब वे ठीक हो जाते तो चले जाते थे ।

13.3 युवान्-च्वांगः

युवान्-च्वांग 630 ई. में चीन से भारत आया और 644 ई. तक यहां ठहरा। वह "यात्रियों का राजकुमार", "नीति का पंडित" और "वर्तमान शाक्यमुनि" कहा जाता है। वह ताशकंद, समरकंद और बल-भा होता हुआ 630 ई. में गंधार में पहुँचा। वहाँ से वह कश्मीर पहुँचा जहाँ वह दो वर्ष रहा। वह पंजाब भी गया। उसने कपिलवस्तु, बनारस, गया और कुशीनगर की यात्रा की। नालंदा विश्वविद्यालय में वह बहुत समय तक ठहरा। उसने दक्षिण तथा पश्चिमी घाट की भी यात्रा की। उसने लगभग सारे देश में भ्रमण किया। उसकी यात्रा वर्णन का उद्देश्य भारत में बौद्ध धर्म की जानकारी देने का था। इसके अतिरिक्त युवान्-च्वांग ने भारत की राजनैतिक दशा का वर्णन किया है। उसने अपने आश्रयदाता हर्षवर्धन और भारत के अन्य समकालीन राजाओं के बारे में भी रोचक जानकारी दी है। उनका वृत्तान्त भारत की धार्मिक, सामाजिक एवं आर्थिक दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।

13.3.1 कन्नौज की राजगद्दी पर बैठना:

युवान्-च्वांग के विवरण से पता चलता है कि हर्ष कन्नौज की राजगद्दी पर किस प्रकार बैठा? राजश्री दारुण विपत्तियों और बौद्ध उपदेशों के परिणामस्वरूप शासन का भार ग्रहण करने को तैयार नहीं थी। कन्नौज के मौखरी राजा ग्रहवर्मन् के उत्तराधिकारी के अभाव में पोनी के नेतृत्व में कन्नौज के मंत्रियों और राजनीतिज्ञों ने हर्ष से राजकुल का मुकुट स्वीकार करने की प्रार्थना की। वह एकाएक इसके लिए तैयार नहीं हुआ। बोधिसत्व अवलोकितेश्वर के अनुरूप उसने शासन की बागडोर तो सम्भाली किंतु वह न तो गद्दी पर बैठा और न महाराज की उपाधि धारण की। उसने केवल शीलादित्य काविरूढ तथा कुमार की उपाधि धारण की। ऐसा प्रतीत होता है कि कालांतर में जब हर्ष की शक्ति मली-भाँति से प्रतिष्ठित हो गयी और उसने अपनी राजधानी धानेश्वर से हटाकर कन्नौज में स्थापित की और पूर्ण सम्राट के विरूद्ध धारण कर वह इस नए राज्य का स्वामी बन गया।

13.3.2 राजनैतिक दशा:

युवान्-च्वांग ने उस समय की उत्तर-भारत की राजनैतिक दशा का प्रसंगवश संक्षेप में वर्णन किया है। उसने उन राज्यों का उल्लेख किया है जिनमें बौद्ध स्थान स्थित थे। कई बार उसने इन राज्यों की राजनैतिक स्थिति का भी उल्लेख किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है।

युवान्-च्वांग ने हिन्दुकश पहाड़ के दक्षिण में स्थिति शक्तिशाली राज्य कपिशा (आधुनिक अफगानिस्तान) राज्य का उल्लेख किया है जो क्षत्रिय राजा के अधीन था। इसके समीप उद्यान राज्य था। पूर्वी-पंजाब में मुख्य राजों के नाम थे - छट्टे-क (VCD), कश्मीर, चि-न-पुट्ट-ति, जालंधर कुलुत और शतद्र के राज्य थे। चूंकि हर्ष इनकी राजनैतिक स्थिति को नहीं बतलाता संभव है ये राज्य हर्ष के साम्राज्य में सम्मिलित थे। यमुना के पूर्व में मो -ति-पु

-लो (पश्चिमी रो हिल खण्ड) सु-फ-ल-न-कु-त-लो (सुवर्णगोत्र) नेपाल और कामरूप के राज्य थे । मो-ति-पु-लो पर शूद्र राजा का शासन था, तथा सुवर्ण गोत्र पर स्त्रियों का ।

उत्तर प्रदेश, बिहार और बंगाल में अन्य राज्यों के नाम दिये हैं किंतु उनकी राजनैतिक स्थिति का कुछ उल्लेख नहीं है । ऐसा प्रतीत होता है कि इनमें से अधिकतर राज्य हर्ष के साम्राज्य के अंग थे ।

उस समय का राज्य जिनमें बुंदेलखण्ड, ग्वालियर और उज्जैन सम्मिलित थे, ब्राह्मण राजा राज्य करते थे । पश्चिमी भारत में सबसे शक्तिशाली मो-ल-पो (पश्चिमी मालवा) का राज्य था जिसका कच्छ (खेड), आनंदपुर और सुराष्ट्र पर अधिकार था । इसके अतिरिक्त पश्चिमी में वलभी, भडोच, गुर्जर और सिंधु के राज्य थे । पि-तो-विह-लो और अफन-तु सिंधु के अधीन राज्य थे ।

13.3.3 विजयें और साम्राज्य:

युवान--च्वांग के वृत्तांत में हर्ष के कुछ विजय प्रसंग हैं । वह लिखता है कि हर्ष पूर्व की ओर बढ़कर उसने उन राज्यों पर आक्रमण किया जिन्होंने उनकी अधीनता स्वीकार न की । जब तक उसने पांच भारतों (सौराष्ट्र, कान्यकुब्ज, गौड़, मिथिला और उड़ीसा) पर अधिकार न कर लिया, छः वर्षों तक निरन्तर राज्य करता रहा । वह लिखता है कि शीघ्र उसने अपने भ्राता की मृत्यु का बदला ले लिया और वह "भारत का स्वामी" बन गया । फिर वह लिखता है कि शीलादित्य महाराज ने अब तक पूर्व से पश्चिम तक के देश जीत लिये थे और दूरस्थ प्रदेशों तक धावे मारे थे । ऐसा प्रतीत होता है कि राज्यारोहण के वर्ष 606 ई० और 612 ई० के बीच उसके ये युद्ध समाप्त हो गये । इसी प्रसंग में युवान-च्वांग के दूसरे वक्तव्य के अनुसार उसने 30 वर्ष तक बिना अस्त्र उठाये शांतिपूर्वक राज्य किया । हर्ष को दूसरी बार पूर्व में मगध, उड़ीसा और कोमोद के विरुद्ध 641 के पश्चात लड़ना पडा जिसका भी युवान-भाग उल्लेख करता है ।

हर्ष के जीवन वृत्तांत (हुइली) से प्रकट है कि स्वयं हर्ष ने इस मोहा-ल-च (महाराष्ट्र) के पु-लो-किशा (पुलकेशिन द्वितीय) के विरुद्ध सैन्य संचालन किया परन्तु परिणाम विरुद्ध हुआ और दक्षिणाधिश ने उसने बुरी तरह परास्त कर गहरी क्षति पहुंचाई । यह युद्ध 634 ई० के पूर्व ही कमी हुआ होगा । क्योंकि इस वर्ष के ही रविकीर्ति के ऐहोस के अभिलेख में इस घटना का वर्णन है ।

युवान--च्वांग के वृत्तांत के आधार पर ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष के साम्राज्य में उत्तर प्रदेश (मथुरा और मतिपुर को छोड़) बिहार, बंगाल, कोंगोद अथवा गंजाम के साथ उड़ीसा शामिल थे । इसकी पुष्टि अभिलेखों तथा साहित्यिक सामग्री से भी होती है ।

13.3.4 प्रशासन:

विस्तृत साम्राज्य की व्यवस्था के लिए हर्ष ने अपना प्रशासन सुधारा । युवान-च्वांग लिखता है कि राज्य की सीमाएं बढ़ने पर उसने अपनी सेना की संख्या में वृद्धि की । पहले

उसके पास 5,000 हाथी, 2000 घुड़सवार और 5,000 पैदल सैनिक थे । बाद में उसके पास 60,000 हाथी और 1,00,000 घुड़सवार हो गए । इस विशाल सेना-शक्ति पर साम्राज्य की रक्षा निर्भर थी ।

प्रशासन की सुव्यवस्था और सफलता हर्ष के श्रम और सदाचरण पर निर्भर था । हर्ष अपने विस्तृत साम्राज्य की आवश्यकता जानकारी के लिए सचेत रहता था । दिन को उसने राजकार्य और धर्माचरण के लिए अनेक भागों में विभक्त कर लिया । दिन का विस्तार उसके कार्य के लिए सर्वथा बहुत कम था । उसे राजप्रसाद में बैठ, दूर से शासन करने में संतोष नहीं था । अपितु वह सर्वत्र दण्डनीयों को दण्डित करने और भूलों को पुरस्कृत करने हेतु स्थान-स्थान की यात्रा किया करता था। अपनी इन परिवेक्षण यात्राओं में वह अपने राज्य की प्रजा के निकट संपर्क में आता था तथा साथ में प्रजा को भी अपनी असुविधाओं को प्रस्तुत करने को पर्याप्त अवसर मिल जाते थे ।

युवान-च्वांग के लेखानुसार पोनी के नेतृत्व में मंत्रियों तथा राजनीतिज्ञों ने हर्ष को राजमुकुट प्रदान किया था । उसने तो यहां तक लिखा है कि देश का स्वामित्व अधिकारियों के हाथ था । संभवतः हर्ष के शासन कार्य में मंत्री-परिषद् सहायता करती थी, तथा उसका कुछ अंकुश भी हो सकता है ।

युवान-च्वांग ने हर्ष के प्रशासन की प्रशंसा की है । उसका दण्ड-विधान हल्का था । कुलों की रजिस्ट्री नहीं होती थी और बेगारी भी नहीं ली जाती थी । अतिशासन की दुर्त्यव्यवस्था न होने के कारण लोग स्वतंत्र रूप से विचरते थे । 'उनका नैतिक विकास किसी प्रकार अवरूद्ध न था । लगान कम था और पैदावार का छठा भाग वसूल किया जाता था । राज्य की आय के आधार थे - खेत की उपज, व्यापारियों की विक्रय की वस्तुओं पर चुंगी और घाटों तथा प्रादेशिक सीमाओं पर लगने वाले कर । हर्ष के शासन का उदार रूप इससे भी प्रकट होता है कि उसने विभिन्न धर्मावलम्बियों को दान तथा विद्वानों को प्रभूत पुरस्कार की व्यवस्था की थी ।

व्यवस्थित शासन प्रबंध के कारण लोगों में परस्पर सदभाव था और लड़ाई झगड़े अथवा मारपीट के अपराध बहुत कम थे । इसके उपरांत भी राजपथ और जलमार्ग सुरक्षित थे । लुटेरों का भय प्रायः बना रहता था । स्वयं युवान-च्वांग अनेक बार उनसे लुट गया था । एक बार तो उसकी बलि तक दी जाने लगी थी । अपराधों का कानून बड़ा कड़ा था । कानून के विरुद्ध आचरण राजद्रोह का साधारण दण्ड आमरण कैद थी । सामाजिक अत्याचार के विरुद्ध अपराध तथा अविश्वसनीय आचरण और व्यभिचार का दण्ड नाक, कान, हाथ, पैर काट लेना अथवा अपराधी को देश निष्कासन या बनवास था । साधारण अपराध का दण्ड जुरमाना था । अग्नि, जल, तौल, विष आदि के प्रयोग से अभियुक्त की निर्दोषता आंकी जाती थी । दण्ड की कठोरता के कारण भी अपराधों की संख्या में कमी हो गई थी ।

13.3.5 कन्नौज की महत्ता:

युवान-च्वांग ने कन्नौज की महत्ता का भी गुणगान किया है । यह उत्तर-भारत का प्रमुख नगर हो गया था । इस नगर में सौ विहार थे और भिक्षु 10,000 से अधिक संख्या में रहते थे । देव मंदिर प्रायः दो सौ थे । बौद्धेतर साम्प्रदायिक लोग कई हजार थे । नगर बीस ली

अथवा आठ किलोमीटर लम्बा और पांच ली (2 किलोमीटर) चौड़ा था । इसके निर्माण की योजना व्यवस्थित थी । इसमें भव्य उद्यान तथा स्वच्छ जलपूरित सरोवर थे । साधारण तथा गृहस्थों के घर सादे, स्वच्छ और आरामदेह थे । नागरिक सुसंस्कृत थे । वे सुचिक्कण कापाय वस्त्र धारण करते थे । वे सर्वथा स्पष्ट और शुद्ध भाषा बोलते थे । उनके स्पष्ट सही उच्चारण आदर्श माने जाते थे ।

13.3.6 कन्नौज की सभा:

युवान--च्वांग से पता चलता है कि हर्ष ने 643 ई० में एक सभा का 23 दिन के लिए आयोजन किया । इसका मुख्य उद्देश्य महायान सिद्धांतों का प्रचार करना था तथा साथ में युवान--च्वांग की विद्वता को प्रदर्शित करना था । इस सभा में अनेक नरेश, बौद्ध भिक्षु तथा पुरोहित सम्मिलित हुए । हर्ष ने लोगों को बैठने हेतु दो बड़े समाग्रह बनवाये । बीच में एक बुर्ज था जिसके नीचे राजा के आकार की बुद्ध की स्वर्ण प्रतिमा स्थापित की गई थी । जलूस में हर्ष और भस्करवर्मन क्रमशः शक और ब्रह्मा के रूप में उसकी सेवा में संलग्न थे । उसके पीछे ऊंचे गजों पर राजा, पुरोहित और राज्य कर्मचारी चले । जलूस के अंत में हर्ष ने मूर्ति की पूजा की और एक बड़ा भोज दिया ।

इसके बाद अधिवेशन आरंभ हुआ और युवान-च्वांग को सभापति बना दिया गया । उसने महायान के गुणों का विस्तृत विवेचन कर उपस्थित जनों को अपना प्रतिवाद करने की चुनौती दी परन्तु किसी ने उसके तर्क का उत्तर नहीं दिया । वह पांच दिनों तक निर्विवाद स्वामी बना रहा । जब हर्ष को युवान-च्वांग के प्रतिस्पर्धियों के जान से मारने के षड्यंत्र का पता चला तो उसने तत्काल घोषणा की कि यदि किसी ने उसके अतिथि को तनिक भी क्षति पहुंचाई तो वह उसे प्राणदण्ड देगा । इस घोषणा के परिणाम स्वरूप शेष 18 दिनों तक किसी ने युवान--च्वांग के विचारों का विरोध नहीं किया । इस प्रकार जीवन वृत्तांत के अनुसार अधिवेशन का कार्य सफलतापूर्वक सम्पन्न हुआ । सी-यू-की का वृत्तांत इससे भिन्न है और उससे विदित होता है कि अधिवेशन में असाधारण घटनाओं द्वारा अंत हुआ । ऊंचे बुर्ज में एकाएक आग लग गई और विद्यार्थियों के प्रति हर्ष की उदासीनता के फलस्वरूप उसके प्राण लेने का भी प्रयत्न किया गया । तब उसने पाँच सौ ब्राह्मणों को बंदी बना कर उन्हें देश से बाहर कर दिया। शेष को उसने क्षमा कर दिया । इस अधिवेशन से युवान--च्वांग के भाषण का हर्ष पर बहुत प्रभाव पड़ा । हर्ष ने उसका बड़ा आदर किया । वह युवान-च्वांग को बहुमूल्य रत्न प्रदान करना चाहता था किंतु उसने त्याग की भावना के कारण मना कर दिया ।

13.3.7 प्रयाग की सभा:

युवान--च्वांग ने 643 ई० में हर्ष द्वारा आयोजित की गई छठी पंचवर्षीय दान वितरण प्रयाग की सभा का भी वर्णन किया है जिसको देखने के लिए वह आमंत्रित किया गया था । इसमें वलभी के राजा ध्रुवभट, आसाम के राजा भाष्करवर्मन और पांचों भारतों के राजा हर्ष के निमंत्रण पर सम्मिलित हुए । इसमें पांच लाख से भी अधिक व्यक्ति जैसे - ब्राह्मण, नास्तिक निर्गन्थ, दरिद्र और अनाथ उपस्थित थे । यह अधिवेशन 75 दिन तक चलता रहा । पहले दिन

बुद्ध की मूर्ति की पूजा की गई और लोगों में असंख्य वस्त्र और बहुमूल्य वस्तुएं बांटी गई । दूसरे और तीसरे दिन क्रमशः सूर्य और शिव की मूर्तियों का सम्मान किया गया किंतु दान का धन क्रमशः पहले दिन से आधा कर दिया गया । चौथे दिन दस हजार बौद्ध भिक्षुओं को दान दिया गया । अगले दिन ब्राह्मणों को दान दिया गया । जैन धर्म तथा अन्य धर्मावलंबियों को भी दान दिया गया । निर्धन, अनाथ और पंगु लोगों को सहायता दी गई । यह सब 75 दिन तक चलता रहा । इस प्रकार राज्य का पांच साल का संचित किया हुआ विस्तृत कोष दान में समाप्त कर दिया जाता था । इसके उपरांत हर्ष ने अपने व्यक्तिगत रत्न और वस्तुएं भी दान में दे डालीं। सब कुछ देने के बाद उसने अपनी बहिन राज्यश्री रो एक पुराना वस्त्र पहिने को मांगा । इस प्रकार हर्ष का इतिहास में व्यक्तिगत दान का एक आदर्श उदाहरण है ।

13.3.8 हर्ष का धर्म:

ऐसा प्रतीत होता है कि हर्ष आरंभ में परम माहेश्वर था किंतु बाद के दिनों में वह बौद्धधर्म की ओर अधिकाधिक आकृष्ट होता गया और अंत में वह प्रायः बौद्ध हो गया । इसकी पुष्टि युवान्-च्यांग के वृत्तांत से भी होती है । कश्मीर का उसने बुद्ध का दाँत बलपूर्वक स्वायत्त कर उसे कन्नौज के संधाराम में सुरक्षित किया था । उसका प्रतिवर्ष कथोपकथन आदि के लिए बौद्धभिक्षुओं का आमंत्रण, बौद्ध विहार तथा स्तूप निर्माण और पशु वध तथा मांस-भक्षण के विरुद्ध कठोर दण्ड-विधान आदि उसकी बौद्ध होने की रुचि को प्रकट करते हैं । गरीबों और रोगियों के लिए निःशुल्क भोजन तथा औषधियाँ और पुण्यशालाओं का निर्माण भी बौद्ध आदर्शों से अनुप्राणित था । कन्नौज के अधिवेशन को भी उसने महायान के सिद्धांतों के प्रचारार्थ बुलाया था, तथा युवान्-भाग की विद्वता को प्रदर्शित करने का भी प्रयत्न किया था । प्रयाग की समा में भी हर्ष ने पहले दिन बुद्ध की प्रतिमा की पूजा की तथा बौद्ध भिक्षुओं को अन्य की तुलना में अधिक दान दिया ।

हर्ष की संरक्षता में ही बौद्धधर्म कन्नौज में अधिक फलाफूला यद्यपि अन्य प्रदेशों में उसका हास हो चला था । हर्ष बौद्धधर्म का अनुयायी होने पर भी धार्मिक विषयों में उदार था । उसने कन्नौज की सभा में शुक्र और ब्रह्मा को बुद्ध के पार्षद बनाये । प्रयाग की सभा में भी बुद्ध की मूर्ति की पूजा के पश्चात् सूर्य और शिव की मूर्तियों का सम्मान किया गया तथा ब्राह्मणों और निग्रन्थों को भी दान दिया गया ।

13.3.9 देश की धार्मिक स्थिति:

युवान्-च्यांग भारतवर्ष में बौद्धधर्म की बहुत कुछ सही जानकारी देता है । इस धर्म के मुख्य सम्प्रदाय महायान और हीनयान थे। जिनमें से प्रथम का विशेष प्रचार हुआ था । यात्री ने उसकी 18 शाखाओं का भी वर्णन किया है जो अपने क्रिया-अनुष्ठानों में एक-दूसरे से भिन्न थे और जिनमें से प्रत्येक अपनी बौद्धिक महता की घोषणा करता था । युवान्-च्यांग ने इन सम्प्रदायों से संबंधित केन्द्रित स्थानों का भी उल्लेख किया है । कूची, बलख, कश्मीर, स्थानेश्वर, श्रुघ्न, प्रयाग और कोशाम्बी लगातार हीनयान सम्प्रदाय की विशेष शाखा सर्वास्तवादिन के केन्द्र बने रहे । बभिआन में लोकोत्तरवादिन बौद्ध बसे हुए थे । कपिशा

जालंधर, मथुरा, साकेत, नेपाल, पुण्डर्वर्धन, कोकणपुर महाराष्ट्र और उज्जैन में हीनयान और महायान दोनों शाखाओं का प्रभाव था । लंप, तक्षशिला, कुल्लु, मगध, उडीसा और विदर्भ में महायान शाखा के अनुयायी देखे जाते थे । सम्मितीय सम्प्रदाय का महत्व बहुत हो गया था । इसके अनुयायी अनेक स्थानों पर जैसे विशोक अहिच्छत्र, संकास्य श्रावस्ति, कपिलवस्तु, वाराणसी, वैशाली, कर्णसुवर्ण, मालव, वलभी, हयमुख, आनन्दपुर, सिंध, कच्छ और अवन्त । समतट और द्रविड़ में स्थविर बसते थे । अन्दरब और धनकटिक (अमरावती) में भी महासंधिकों का प्रभाव कम हो रहा था ।

युवान-च्वांग का कश्मीर के राजा द्वारा बड़ा सम्मान किया गया । उसने यात्री के लिए बौद्ध ग्रंथों की नकल कराने हेतु बीस पंडित नियुक्त किये । दो साल वहां रहकर वह सियालकोट आ गया । यहां पर दो वर्ष तक भिक्षु विनीत प्रभु से अभिधर्मपिटक का अध्ययन किया । वह श्रुघ्न में रहकर बौद्ध भिक्षु जयप्रभ से तथा मतिपुर में मित्रसेन से बहुत कुछ सीखा । वह तीन मास कन्नौज में भी रहा । नालंदा के प्रसिद्ध कुलपति शीलभद्र का भी वह शिष्य रहा ।

यद्यपि युवान-चवांग ने भारतवर्ष में बौद्ध धर्म का शानदार चित्रण प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है, उसके वृत्तांत से साथ में यह भी अनुमान लगाया जा सकता है कि बौद्धधर्म की उन्नति में एक प्रकार की रोक लग गई थी । इस धर्म का प्रभाव लोगों में कम होता जा रहा था । भारत के उत्तर-पश्चिम के हिस्सों में विशेषकर नगरकोट, गंधार, उद्यान और तक्षशिला में विहार खण्डहर अवस्था में पड़े थे और वीरान हो गये थे । यही स्थिति पूर्व में श्रावस्ती, वैशाली, चंपा और पुडवर्धन स्थानों की थी । दक्षिण में धनकटक (अमरावती, चोलप्रदेश और मलकूट) पांड्यप्रदेश में बहुत कम बौद्ध भिक्षु रहते थे ।

युवान-च्यांग के वृत्तांत में बौद्ध धर्म के अतिरिक्त अन्य धर्मों का भी वर्णन किया गया है । दिगम्बर जैनधर्म का प्रभाव वैशाली, पौडवर्धन और समतट में था । दक्षिण में भी अनेक दिगम्बर जैन बसते थे । जीवन वृत्तांत में भी भूतों कापलिकों जूतिकों, सांख्यको, वैशेषिकों आदि का वर्णन है । इन विविध वर्ग के परिधान, विश्वास तथा क्रियानुष्ठान भिन्न-भिन्न थे । ये भिक्षाटन करते थे, और बिना व्यक्तिगत आवश्यकताओं की परवाह किये अपने दृष्टिकोण रो सत्य की खोज में लगे रहते थे ।

13.3.10 विद्या का संरक्षक:

युवान-च्वांग से ज्ञात होता है कि हर्ष विद्या का संरक्षक था, और वह राजकीय आय का चौथा भाग विद्वानों को पुरस्कृत करने में व्यय करता था । उसके जीवन-वृत्तांत के अनुसार उसने उदारतापूर्व प्रसिद्ध बौद्ध विद्वान जयसेन को 80 बड़े नगरों की आय दान कर दी यद्यपि उसने उसे स्वीकार नहीं किया । युवान-चवांग से यह भी पता चलता है कि हर्ष प्रसिद्ध नालंदा विश्वविद्यालय का आश्रयदाता था । उसने वहां शानदार विहार बनवाया तथा कांसे का मंदिर भी।

युवान-च्वांग ने उन ब्रह्मणों की विद्वता की सराहना की जो समस्त जीवन अध्ययन में व्यतीत करते थे और गरीबी से रहते थे । नालंदा विश्वविद्यालय के स्थानीय बौद्ध भिक्षुओं

का न केवल ज्ञान किंतु उच्च चरित्र होने के कारण सम्मान- किया जाता था । नालंदा विश्वविद्यालय में प्रवेश पाने हेतु बाहर से भी विद्यार्थी आते थे । पाठ्यक्रम में न केवल बौद्धधर्म के ग्रंथ अपितु वेद, हेतुविद्या, शब्दविद्या, चिकित्साविद्या अथर्वविद्या सांख्य आदि सम्मिलित थे । नालंदा विश्वविद्यालय को चलाने के लिए 200 ग्राम दान में दिये हुए थे ।

13.3.11 सामाजिक दशा:

युवान-च्वांग ने न केवल भारतीय समाज के जन्मजात चार वर्णों का किंतु साथ में उनके धंधों का उल्लेख किया है । ब्राह्मण धर्म-कर्म, क्षत्रिय शासन, वैश्य व्यापार तथा शूद्र खेती और परिचर्या का कार्य करते थे । एक ही जाति के विभिन्न वर्गों में विवाह सीमित थे । विधवा विवाह की प्रथा नहीं थी । गणिका के साथ देवदासी की प्रथा भी थी । सिंध के समीप एक नगर के सूर्य मंदिर में देवदासियाँ रखी जाती थी । लोग प्रायः सच्चे और विश्वस्त थे । अपने आचरण में वे धोखेबाज नहीं थे । व्यवहार में वे सर्वथा स्पष्ट और न्यायसंगत एवं बहुत सदाचारी और शीलवान थे ।

शारीरिक सफाई का वे बहुत ध्यान रखते थे । खाने से पहले वे हाथ-मुंह धो लेते थे । जूठन वे कभी नहीं खाते थे । मिट्टी के बर्तनों को नष्ट कर दिये जाते थे तथा धातु के बर्तनों को रगड़कर मांजा जाता था । खाने के बाद वे अपने मुंह को दातुन से साफ करते थे और हाथ-मुंह धो लेते थे।

लोगों का मुख्य आहार था - गेहूं की चपातियां, भुने हुए दाने, चीनी, घी और दूध के पदार्थ । कुछ अवसरों पर मछली, मृग और भेड़ का मांस भी खाया जाता था । ग्राम तथा कुछ जंगली जानवरों का मांस पूर्णतः वर्जित था । प्याज और लहसुन बहुत कम काम में आते थे । जो व्यक्ति नियमों का उल्लंघन करता था, उसे निष्कासित किया जा सकता था । युवान-च्वांग बताता है कि रेशम, ऊन और सूत के कपड़े बनाने की कला अत्यंत परिष्कृत थी । युवान-च्वांग के अनुसार राजा तथा उच्च व्यक्तियों के आभूषण असाधारण थे । कीमती पत्थरों का "तारा" और हार उनके सिर के आभूषण थे और उनके शरीर अंगुठियों, कंगनों तथा मालाओं से सुसज्जित थे । धनवान व्यापारी लोग केवल कंगन पहनते थे ।

13.3.12 आर्थिक दशा:

भारत की स्मृद्धि से युवान-च्वांग अत्यधिक प्रभावित हुआ । वह हमें बताता है कि लोगों का जीवनस्तर बहुत उंचा था । कौड़ियां और मोती भी मुद्रा के रूप में प्रचलित थे । भूमि उर्वर थी और उत्पादन बहुत अधिक था ।

युवान-च्वांग से हमें सातवीं सदी में जो पैदावार होती थी, उसकी जानकारी मिलती है जैसे - चावल, गेहूँ अदरक, सरसों और कद्दू फलों में आम, तरबूज, नारियल, कटहल, इमली, सेव, अनार तथा नारंगी । युवान-च्वांग ने धातुओं की खानों का भी वर्णन किया है । उससे ज्ञात होता है कि सोना चांदी का भारतवर्ष में बहुतायत से उत्पन्न होता है । उत्तर-पश्चिमी भारत में उद्यान और दरेल,-प्यास और सतलुज के बीच के टक्क और सिंधु से सोना चांदी

प्राप्त होता था । तांबा और लोहा व्यास और सतलुज के बीच पाया जाता था । तांबा नेपाल और कलूत (कुलुदेश) में भी प्राप्त होता था । युवान-चवांग की नालंदा यात्र के समय वहां पूर्णवर्मन द्वारा निर्मित बड़ी भारी ताबे की मूर्ति तथा शिलादित्य (हर्ष) हर्ष द्वारा निर्मित पीतल का मंदिर विद्यमान था । औद्योगिक जीवन जातियों तथा बड़ी-बड़ी श्रेणियों तथा निगमों पर आधारित था ।

राज्य की आय कैसे खर्च होती थी, इसका अनुमान् युवान-चवांग के वर्णन से लगाया जा सकता है । एक भाग आर्थिक कृत्यों तथा सरकारी कामों में खर्च होता था । दूसरा भाग बड़े-बड़े सार्वजनिक अधिकारियों पर खर्च होता था । तीसरा भाग विद्वानों को पुरस्कार और वृत्ति देने के लिए था और चौथा भाग दान-पुण्यादि में काम आता था ।

युवान-चवांग के वृतांत से कुछ राजनैतिक घटनाओं का पता चलता है । उसके अनुसार हूणराजा मिहिरकुल ने बौद्धों पर अन्याय व अत्याचार किये । उसने बौद्धों को मरवाये और उनके स्तूप और विहार नष्ट किये । बालादित्य नाम के राजा ने उसका विरोध किया और उसको कर देने से मना कर दिया । जब मिहिरबालादित्य की पहिचान गुप्त सम्राट बुद्धगुप्त के उत्तराधिकारी नरसिंहगुप्त (488 ई०) से की जाती है ।

13.4 ई-त्सिंग

ई-त्सिंग एक चीनी यात्री था जिसने 672 और 888 ई० के मध्य भारत के भ्रमण किया था । उस समय के भारतियों की धार्मिक, सामाजिक और आर्थिक अवस्था का उसने सजीव चित्रण किया है । प्रसंगवश उसने भारत की राजनीतिक स्थिति का भी वर्णन किया है ।

13.4.1 बौद्धधर्म:

ई-त्सिंग ने तुर्कीस्तान में बौद्धधर्म का प्रभाव और भारत के साथ उसके संपर्क का उल्लेख किया है । तुखार लोगों ने अपने देश के भिक्षुओं हेतु भारत में एक मंदिर बनवाया । यह मंदिर स्मृद्धि आर व्यवस्था की तुलना में अन्य मंदिरों से श्रेष्ठ था । जब उत्तर के भिक्षु यहां आते थे तो वे इसी मंदिर में ठहरते थे । इन लोगों ने एक प्रकार का जातीय समुदाय बना लिया था और वे विहारस्वामी कहलाते थे । ई-त्सिंग यह भी बतलाता है कि बोध गया में कपिशा मंदिर था जहां उत्तर के लोग रूकते थे । सुमात्रा में स्थित श्रीविजय बौद्धधर्म का एक बहुत बड़ा केन्द्र हो गया था । श्रीविजय के राजा के अधिकार में भारत और श्रीविजय में चलने वाले व्यापारी जहाज थे ।

13.4.2 नालंदा विश्वविद्यालय और शिक्षा पद्धति:

ई-त्सिंग नालंदा विश्वविद्यालय के बारे में जानकारी देता है । वह स्वयं इस रथान पर 10 वर्ष बौद्ध ग्रंथों के अध्ययन एवं नकल हेतु ठहरा । इस विश्वविद्यालय में आवासियों की संख्या 3000 से अधिक थी । इसमें आठ सभा भवन थे जिनमें तीन सौ कमरे थे । इसके अधिकार में 200 से अधिक ग्राम थे जो कई पीढियों के राजाओं ने उसे प्रदान किये थे ।

चन्द्रकीर्ति, शांतिदेव और शांतरक्षित यहां के इस समय प्रसिद्ध आचार्य थे । 60 विदेशी बौद्धयात्री जो भारत आये थे, उनमें से बहुत से बौद्ध ग्रंथ के अग्रिम अध्ययन हेतु यहाँ ठहरे हुए थे ।

ई-त्सिंग ने उस समय की शिक्षा प्रणाली का भी वर्णन किया है । विद्यार्थी को छठे वर्ष में सिद्धिरस्तु को पढ़ाया जाता था, जिसे वह छः महिने में पूरा कर लेता था । वह आठ वर्ष की आयु में पाणिनि सूत्र और धातुपाठ को पढ़ना शुरू करता था और आठ मास में पूरा कर लेता था । पन्द्रह वर्ष की आयु में बालक "काशिकावृत्ति" पढ़ना शुरू करता था और पांच वर्ष में उसने पूरी तरह समझ लेता था । इसके पश्चात विद्यार्थी पद्य तथा गद्य रचना, तर्क, आध्यात्म विद्या आदि का अध्ययन करता था ।

ई-त्सिंग ने भर्तृहरि द्वारा लिखित एक ग्रंथ का उल्लेख किया है । उसमें 25,000 श्लोक थे । भर्तृहरि सारे भारत में बहुत प्रसिद्ध आ और उसकी मृत्यु 650 ई० में हुई थी । उसने यह भी लिखा है कि शीलादित्य ने बोधिसत्व जीभूतवाहन की कथा को काव्य-बद्ध किया और उसे मंच पर खेला ।

आचार्य और शिष्य अनुशासन के नियमों का दृढ़ता से पालन करते थे । ई-त्सिंग उनके पारस्परिक संपर्कों के - बारे में भी जानकारी देता है । विद्यार्थी आचार्य की सेवा करता था । वह उसकी मालिश करता था, उसके कपड़े तह करता था और कभी-कभी कमरों तथा आंगन को साफ करता था । वह गुरु को शुद्ध जल लाकर देता था । इसके साथ-साथ आचार्य भी अपने शिष्य के आचरण पर दृष्टि रखता था और उसके दोष बताता था । वह उसके साथ पुत्र जैसा व्यवहार करता था । वह यदि बीमार हो जाता था, तो उसे औषधियां दिलवाता था और उसकी सेवा भी करता था ।

विहारों के अधिकार में भूमि होती थी । जब भी संघ द्वारा किसी सोत में फसल लगाई जाती थी तो सेवकों को बैल तथा अन्य सहायता दी जाती थी । प्रायः उन्हें उपज का छठा भाग दिया जाता था ।

13.4.3 सफाई व्यवस्था:

ई-त्सिंग भारतीयों के सफाई तरीकों का भी उल्लेख करता है । वे मकान की फर्श को गोबर से लेपते थे । वे खाने के पहले स्नान करते थे । खाने के पहले और बाद में मुंह को साफ करते थे । वे खाने के मिट्टी के बर्तनों का प्रयोग के पश्चात फेंक देते थे, तथा धातु के बर्तनों को मल कर साफ करते थे । वे लहसुन नहीं खाते थे ।

13.4.4 उत्पादन:

ई-त्सिंग के वृत्तांत से जान होता है कि भारत में चावल तरबूज और गन्ना बहुत पैदा होता था । अनेक प्रकार के फल भी बहुत उत्पन्न होते थे किन्तु ज्वार बहुत कम । इसके अतिरिक्त यह भी पता चलता है कि उत्तर -पश्चिम में गेहूँ पश्चिम में जौ और चावल और मगध में चावल उत्पन्न होता था ।

13.4.5 वस्त्र:

ई-त्सिंग बताता है कि सारे भारत में लोग दो कपड़े पहिनते थे । वे चौड़ी सिनन के थे और आठ फुट लम्बे थे । वे कमीजें और पायजामे' पहिनते थे । घाघरा शरीर के निचले भाग के चारों ओर बांध लिया जाता था । ई-त्सिंग के अनुसार भारत के चिकित्सा विज्ञान में वैद्य रोगी का इलाज औषधियों के द्वारा करता था । उपवास के द्वारा भी रोग का निदान किया जाता था। अपने स्वास्थ्य के लिए साधारण लोग सैर के लिए जाया करते थे ।

13.4.6 राजनैतिक घटनायें:

ई-त्सिंग ने प्रसंगवश कुछ राजनैतिक घटनाओं तथा व्यक्तियों का भी उल्लेख किया है जो ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है । वह उल्लेख करता है कि श्रीगुप्त नाम के राजा ने चीनी यात्रियों के लिए एक मंदिर बनवाया और उसको 24 ग्राम दान में दिए । कुछ विद्वान इस राजा की पहिचान गुप्तवंश के संस्थापक श्रीगुप्त से करते हैं । यह मंदिर मगध में स्थित था । समतट के राजा राजभट का उल्लेख भी ई-त्सिंग ने किया है । जो खड्गवश का राजा राजभट हो सकता है । पूर्वी-भारत का राजा देववर्मा और देवखड्ग एक हैं ।

13.5 अभ्यासार्थ प्रश्न:

- (1) फाहियान की भारत यात्रा कृतान्त का ऐतिहासिक श्रोत के रूप में महत्व स्थापित कीजिये
- (2) युवान-चवांग द्वारा वर्णित भारत की राजनैतिक, प्रशासनिक एवं धार्मिक स्थितियों का विवरण दीजिए ।
- (3) ई-त्सिंग के यात्रा कृतान्त का विवरण दीजिए ।

13.6 संदर्भ ग्रथ

1. Giles, HA : The Travels of Fa-hien or record of Buddhist Kingdoms Cambridge, 1923
2. Legge, J.H : Record of the Buddhistic Kingdoms, Being an account of the Chines monk Fa-hien's travels , Oxford 1886.
3. Beal, S: Si-Yu-Ki Buddhist Records of the western Word Trans from the chiense of Hiven Tsang, 2 Vols, London, 1966.
4. Beal, S: Life of Hiven Tsang by the Shaman HWUi-Li London, 1911
5. Watters, T: on Yuan Chwang's Travels in India Ed. By T.W.Rhys Davids and S.W Bushell, 2 Vols London 1904, 1905
6. Takakusu , J.A ,: Record of the Buddhistics Religion as practiced in India and the Malay Archipelago, by I-tsing Oxford, 1896
7. Chavaness, E: Memoire compose a lepoquedela grande dynastic tiang sur les religion Eminentis Qui ALLerent chercher a loi dans les pays d

accident, par Itsing, Paris 1896,(A summary in English of this work is given in Beal's life intr.)

MAHI-04/ISBN13/978-81-8496-263-5